उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 12 अंक 1
(जनवरी-जून, 2011)

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 227 107
ई-मेल: cish.lucknow@gmail.com
www.cishlko.org

डॉ. एस. अय्यप्पन, सचिव, डेयर एवं महानिदेशक, भा.कृ.अनु.प., नयी दिल्ली संस्थान के नये प्रयोगशाला खंड का शिलान्यास करते हुए। साथ में खड़े है डॉ. एच.पी. सिंह, उप महानिदेशक (बागवानी) एवं अन्य

डॉ. एस. अय्यप्पन, सचिव, डेयर एवं महानिदेशक, भा.कृ.अनु.प., नयी दिल्ली,
डॉ. एच.पी. सिंह, उप महानिदेशक, बागवानी एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों को मीडिया संसाधन सह आगन्तुक कक्ष के उद्घाटन अवसर पर सम्बोधित करते हुए संस्थान के निदेशक, डॉ. एच. रविशंकर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

© केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ

संरक्षक

एच. रविशंकर
निदेशक
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ-227 107

प्रकाशन समिति

डी. के. टंडन
धीरज शर्मा

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र

निदेशक
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ-227 107
फोन : 0522-2841022-24, फैक्स : 0522-2841025
मीडिया संसाधन कक्ष नं. : 0522-2841082
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cishlko.org

प्राक्कथन

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' का नवीनतम संस्करण पाठकों के सम्मुख एक बार पुनः प्रस्तुत है। संस्थान अपने स्थापना के समय से आज तक आम, अमरूद, आँवला, पपीता, बेल के अलावा जामुन, करौंदा, महुआ, चिरौंजी, खिरनी आदि अल्पप्रयुक्त उपोष्ण फल फसलों की उत्पादकता बढ़ाने तथा मूल्य शृंखला विकसित करने के लिए मौलिक और व्यावहारिक अनुसंधान का कार्य करता रहा है। संस्थान द्वारा उपोष्ण फलों पर राष्ट्रीय निधान के रूप में कार्य किये जाने के कारण यहाँ उन फलों के अभिगमन सैकड़ों की संख्या में संकलित हैं। संस्थान, मानव संसाधन विकास के केन्द्र के रूप में भी कार्य करता है। इसके अन्तर्गत संस्थान न केवल बागवानों और बागवानी से संबंधित अधिकारियों/ कर्मचारियों को प्रशिक्षित करता रहा है अपितु बागवानी से संबंधित सभी सहभागियों को परामर्श भी देता रहा है।

संस्थान द्वारा उपोष्ण फलों की प्रमाणित एवं गुणवत्तायुक्त पौध सामग्री निर्धारित मूल्य पर उपलब्ध करायीजाती है। साथ ही यहाँ आम एवं अमरूद में सघन बागवानी तथा प्रबंधन की प्रौद्योगिकी, पुराने एवं अनुत्पादक बागों का जीर्णोद्धार, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवॉश तथा 'ट्राइकोडर्मा' एवं 'स्यूडोमोनास' बायोएजेंट्स के उत्पादन सहित जैविक उत्पादन तकनीक उपलब्ध कराने का भी कार्य किया जाता है। इसके अलावा पोषण प्रबंधन हेतु मृदा एवं पत्तियों का विश्लेषण, कृषि रसायनों एवं पेस्टनाशियों का मूल्यांकन, पेस्टनाशी अवशेष विश्लेषण, खाद्य सुरक्षा संबंधी सलाह,मूल्य वर्धन सहित उपोष्ण फलों में तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन, अपशिष्ट का उपयोग तथा उद्यमिता के विकासआदि विषयों पर भी संस्थान द्वारा जानकारी उपलब्ध करायी जाती है।संस्थान के मीडिया संसाधन कक्ष (फोन नं. 0522-2841082) से प्रत्येक शुक्रवार पूर्वाह्न 10.30 बजे से सायं 4.00 बजे तक फोन पर या व्यक्तिगत रूप से बागवानों को सलाह उपलब्ध है। संस्थान द्वारा किये गये सभी अनुसंधान संबंधी कार्यों को सहभागियों तक पहुँचाने में राजभाषा हिन्दीतथा राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

'उद्यान रश्मि' के इस अंक के प्रकाशन अवसर पर मैं आशा करता हूँ कि इसमें निहित लेख सभी सहभागियों, विशेषकर बागवानों के लिए लाभकारी होंगे। इस अवसर पर मैं उम्मीद करता हूँ कि संस्थान के सभी अधिकारी/कर्मचारी संघ की राजभाषा नीति का अनुपालन करेंगे। मैं पत्रिका के प्रकाशन अवसर पर प्रकाशन समिति,राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों एवं लेखकों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

(एच. रविशंकर)
निदेशक

सम्पादकीय

संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' का यह संस्करण नूतन जानकारियों के साथ प्रकाशित किया गया है। इसमें निहित आम की अज्ञात बीमारियाँ तथा फूल वाले परजीवी पौधे एवं अधिपादप, खीरा की खेती, औद्यानिक फसलों में मृदा उपयुक्तता एवं उनका परीक्षण, ऊष्मीय प्रसंस्करण एवं उनका औद्यानिक पदार्थों की गुणवत्ता पर प्रभाव, आँवला के उपयोग अनेक, बागवानी फसलों में नर्सरी का महत्व, अमरूद में जैव विविधता–उत्तर प्रदेश की अमूल्य सम्पदा, मशरूम उत्पादन : एक लाभप्रद व्यवसाय, करौंदा के व्यावहारिक गुण, गृह वाटिका में फलोत्पादन, आम में भुनगा एवं गुजिया कीट का प्रबंधन, आम में पाउड्री मिल्ड्यू रोग का प्रबंधन, आम और अमरूद के लिए जस्ता की उपयोगिता और फल एवं सब्जी अपशिष्टों के मूल्यवर्धन का महत्व विषयों पर विशिष्ट जानकारियाँ उपलब्ध करायी गयी हैं। इसके प्रकाशन में संस्थान के समस्त वैज्ञानिकों के विशेष योगदान के लिए उनका साधुवाद।

संस्थान द्वारा राजभाषा के क्षेत्र में विशेष प्रयास किया जा रहा है जिसका परिणाम है कि 'उद्यान रश्मि' के पिछले अंक को नगर की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की छमाही बैठक के दौरान केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक डॉ. तुषार कांति चक्रवर्ती द्वारा द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया। संस्थान में प्रत्येक तिमाही में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक समय से आयोजित की जाती है तथा कार्यशालाओं का आयोजन भी समय से किया जाता है। यहाँ धारा 3(3) के पालन का भी पूरा प्रयास किया जा रहा है।

आशान्वित हूँ कि 'उद्यान रश्मि' का यह संस्करण पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक होगा।

(धीरज शर्मा)
सहायक निदेशक (राजभाषा)

उद्यान रश्मि

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान की राजभाषा पत्रिका

वर्ष 12 अंक 1 (जनवरी-जून) 2011

विषय-वस्तु

गृह वाटिका में फलोत्पादन 1

दुष्यंत मिश्र, एच. रविशंकर एवं डी.के. टंडन

अमरूद में जैवविविधता-उत्तर प्रदेश की अमूल्य सम्पदा 6

शैलेन्द्र राजन, रामकुमार एवं एल.पी. यादव

आम और अमरूद के लिए जस्ता की उपयोगिता 11

कैलाश कुमार, तरुण अदक एवं विनोद कुमार सिंह

आम में पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा/दहिया) रोग प्रबंधन 14

बी.के. पाण्डेय

आम की अज्ञात बीमारियाँ तथा फूल वाले परजीवी पौधे एवं अधिपादप 16

ए.के. मिश्र एवं ओम प्रकाश

आम में भुनगा एवं गुजिया कीट प्रबंधन 24

आर.पी. शुक्ल

बागवानी फसलों में नर्सरी का महत्व 27

अजय कुमार त्रिवेदी एवं दीपा बिष्ट

औद्यानिक फसलों में मृदा उपयुक्तता एवं मृदा परीक्षण 35

कैलाश कुमार, तरुण अदक एवं विनोद कुमार सिंह

आँवला के उपयोग अनेक 39

देवेन्द्र पाण्डेय एवं अखिलेश कुमार

करौंदा के व्यावहारिक गुण 44

ए.के. सिंह एवं जे.पी. सिंह

खीरा की खेती 48

वी.के. सिंह, कामिनी सिंह एवं अनुराग सिंह

मशरूम उत्पादनः एक लाभप्रद व्यवसाय 52

पी.के. शुक्ल

ऊष्मीय प्रसंस्करण एवं उनका औद्यानिक पदार्थों की गुणवत्ता पर प्रभाव 55

डी.के. टंडन एवं रेखा चौरसिया

फल एवं सब्जी अपशिष्टों के मूल्यवर्धन का महत्व 60

नीलिमा गर्ग, प्रीति यादव, देवेन्द्र कुमार, कौशलेश यादव एवं संजय कुमार

गृह वाटिका में फलोत्पादन

दुष्यंत मिश्र[1], एच. रविशंकर[2] एवं डी.के. टंडन[3]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

गृह वाटिका तैयार करने में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पूरे वर्ष फलों की उपलब्धता बनी रहे क्योंकि बाजार में उपलब्ध फल बासी, कम पौष्टिक तथा रसायनों के प्रयोग के कारण विषैले भी हो सकते हैं। फल दूर-दराज के बागों से तुड़ाई एवं ढुलाई के उपरांत अनेक हाथों से होते हुए लगभग 3-4 दिनों बाद बाजार में उपलब्ध हो पाते हैं। बागवानों द्वारा फलों में कीड़ों तथा बीमारियों की रोकथाम के लिए कीटनाशक रसायनों का प्रयोग किया जाता है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो सकता है। गृह वाटिका में फल के वृक्ष लगाकर ताजे एवं पौष्टिक तथा औषधीय गुणों से परिपूर्ण फल कम खर्च में प्राप्त किये जा सकते हैं।

स्वस्थ शरीर के लिए प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 110 ग्रा. फल खाने की सलाह दी गयी है। किन्तु हमारे देश में प्रति व्यक्ति 60 ग्रा. फल ही उपलब्ध हो पाता है जो आवश्यकता से काफी कम है एवं इनका सेवन भी फल के मौसम तक ही सीमित होता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि फलों की महत्ता एवं उसके पौष्टिक गुणों के विषय में आम लोगों को जानकारी दी जाये। प्रस्तुत लेख में गृह वाटिका में पौष्टिक फलों का उत्पादन पर प्रकाश डाला गया है।

[1]वैज्ञानिक (व.वे.), [2]निदेशक एवं [3]प्रधान वैज्ञानिक

समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों की आवश्यकता एवं रूचि अलग-अलग होती है। इसके अलावा गृह वाटिका के स्वरूप को स्थान भी प्रभावित करता है। शहरी गृह वाटिका में पर्याप्त स्थान नहीं होता है। अतः फल वृक्षों को कम महत्व मिल पाता है। शहरों के बड़े बंगलों की गृह वाटिका में पर्याप्त स्थान होने के कारण वहाँ फूलों, हरियाली, फल वृक्षों एवं शोभाकार वृक्षों को लगाया जा सकता है। गृह वाटिका हेतु घर, फार्म हाउस, विद्यालय एवं पंचायत भवन के आसपास की कृषि कार्यों के लिए अनुपयुक्त भूमि का उचित प्रयोग किया जाना चाहिए।

गृह वाटिका बनाकर पोषक फल प्राप्त करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किन-किन फलों से हमें कौन-कौन से पौष्टिक तत्व मिल सकते हैं। यह जानकारी रख कर ही हम अपनी बगिया को आदर्श गृह वाटिका बना सकते हैं। महत्वपूर्ण पौष्टिक तत्व एवं खनिज की गृह वाटिका को देश के किसी भी भाग में बनाने के लिए निम्नलिखित दिशा-निर्देशों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

गृह वाटिका के मुख्य सिद्धांत

- स्वयं फलोत्पादन पर आत्मविश्वास विकसित करना तथा परिवार के सदस्यों, विद्यार्थियों एवं

ताजे फलों की पूरे वर्ष उपलब्धता बनाये रखने हेतु रेखाचित्र

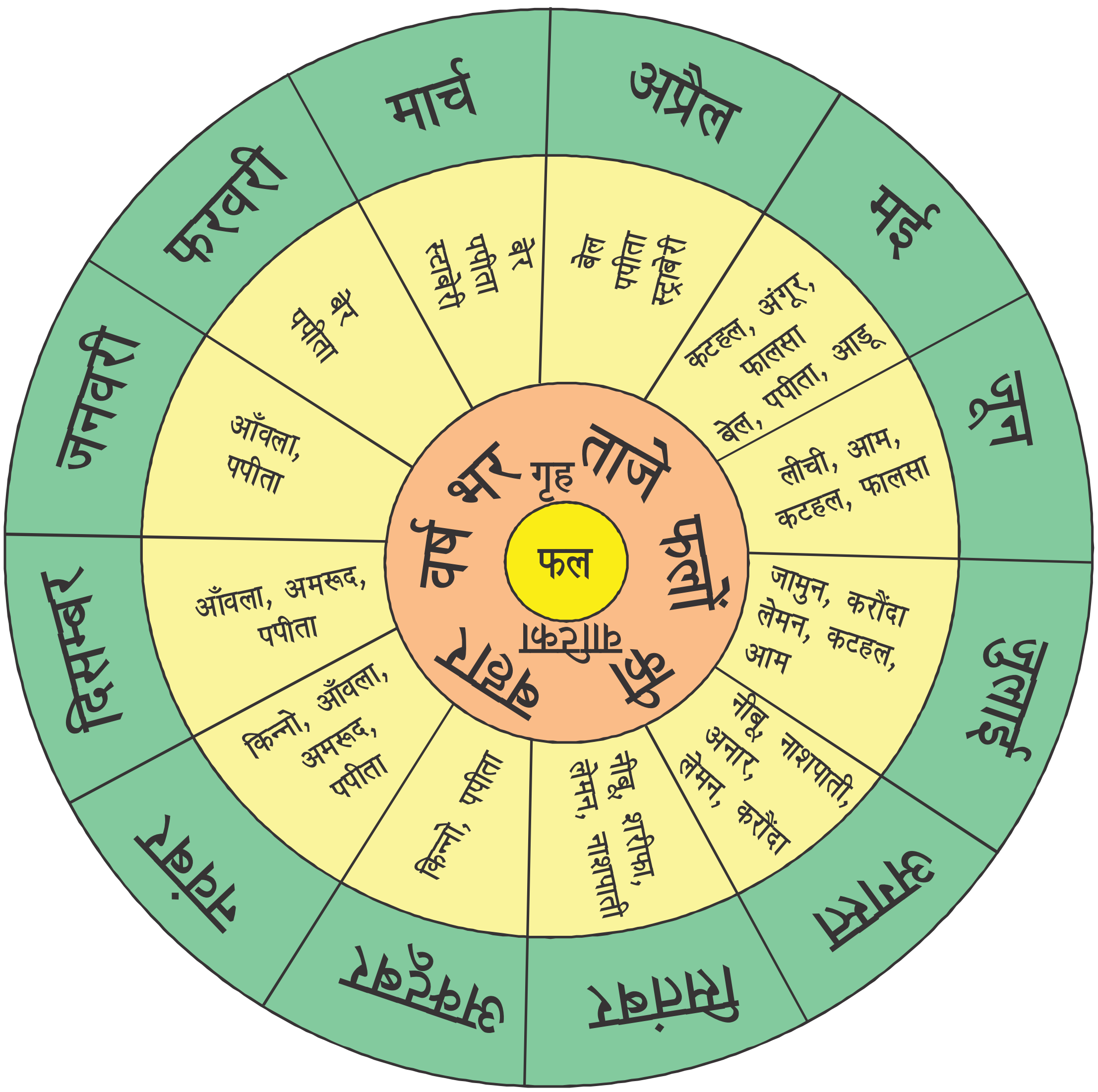

गाँव वालों के साथ काम करना तथा आपसी सहयोग की भावना का विकास करना।

- वर्षपर्यंत ताजे फलों की उपलब्धता से परिवार को समुचित पोषण प्राप्त होना।
- घर तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों के आसपास स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना तथा वायु प्रदूषण के प्रभाव को कम करना।
- घर के सदस्यों को खाली समय में वाटिका के

सारणी 1: गृह वाटिका में लगाने के लिए उपयुक्त किस्में

फल	किस्में
आम	आम्रपाली, अंबिका
अमरूद	ललित, श्वेता, इलाहाबादी सफेदा, सरदार
आँवला	नरेन्द्र आँवला-6, नरेन्द्र आँवला-7
नीबू	विक्रम या कागजी नीबू
पपीता	पूसा डिलीसियस, पूसा ड्वार्फ, कुर्ग हनीड्यू, सूर्या
अंगूर	फ्लेम सीडलेस, पूसा नवरंग
बेल	सी.आई.एस.एच. बी.-1 या नरेन्द्र बेल-5
बेर	उमरान, बनारसी कराका
जामुन	सी.आई.एस.एच. जे.-42 (बीज रहित किस्म)

नियमित कार्यों के लिए प्रेरित करना जिससे उनका मानसिक एवं शारीरिक विकास हो।

- स्थान की उपलब्धतानुसार - लेमन/नीबू, पपीता, अमरूद, अंगूर, आम, केला तथा अन्य फलों का समावेश प्राथमिकता के आधार पर करना।

गृह वाटिका के लिए दिशा-निर्देश

- गृह वाटिका को बनाने में उस स्थान/परिस्थिति में पैदा होने वाले अधिकांश फल वृक्षों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- यदि एक ही फल के अनेक किस्मों के पौधे लगाये जा सकें तो अलग-अलग परिपक्वता वाले विभिन्न किस्मों को वरीयता देनी चाहिए।
- गृह वाटिका में स्थान सीमित होता है तथा उसमें अधिक पौधों को लगाना होता है। अतः कायिक प्रवर्धित, उन्नत, विशेषकर बौनी किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- फल वृक्षों का चयन उनके पोषक मान एवं घर के सदस्यों की रूचि के आधार पर करना चाहिए।
- गृह वाटिका के चारों तरफ सुरक्षा की दृष्टि से बाड़ का होना भी आवश्यक है। इससे गृह वाटिका की सीमाएँ निर्धारित हो जाती हैं। इसके लिए गृह वाटिका के चारों तरफ करौंदा एवं फालसा की बाड़ लगानी चाहिए। इस प्रकार अतिरिक्त भूमि का उपयोग किये बिना ही बड़ी मात्रा में फल उपलब्ध हो सकते हैं।
- वृहत् आकार वाले फल वृक्षों को गृह वाटिका के पीछे या पश्चिम दिशा में स्थान देना उचित होता है। इसी प्रकार बौने एवं कम ओजस्वी पौधों को गृह वाटिका के सामने या पूर्व दिशा में लगाना चाहिए।
- लता वाले फल जैसे अंगूर एवं पैशन फल गृह वाटिका के मुख्य मार्ग पर लगाना चाहिए।
- कम वृद्धि वाले फलों जैसे अनन्नास एवं स्ट्राबेरी, रसभरी आदि को अंतः फसल के रूप में लगाना चाहिए।
- सभी कृषि क्रियाएं (कटाई-छँटाई, खाद देना, सिंचाई, कीट एवं व्याधि नियंत्रण आदि) नियमित रूप से अपनाकर वृक्षों को सदैव स्वस्थ तथा

सारणी 2: ताजे फलों में उपलब्ध मुख्य खनिज तत्व

खनिज तत्व	महत्व	स्रोत फल
फास्फोरस	यह कैल्सियम के साथ मिलकर हड्डियों, दाँतों तथा मांसपेशियों को मजबूत बनाता है। कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन के पाचन में सहायक होता है।	केला, रसभरी, कैथा, अनार, पैशन फल, एवोकैडो आदि।
लोहा	यह शरीर के लाल रूधिर कणिकाओं में पाये जाने वाले हीमोग्लोबिन का मुख्य अवयव है। यह शरीर में कार्यरत अनेक एन्जाइमों में उपस्थित रहता है। इसकी कमी से शरीर में खून की कमी हो जाती है। जिससे मनुष्य रोगी तथा कमजोर हो जाता है।	अमरूद, केला, कच्चा आम, शहतूत, सेब, फालसा, अनन्नास, आँवला, बेर, नीबू, लोकाट, पैशन फल आदि।
सोडियम	यह शरीर के ऊतकों तथा तंत्रिका तंत्र के विकास में सहायक होता है। इसकी कमी से रक्तचाप पर बुरा प्रभाव पड़ता है।	सेब, केला, लीची, जामुन, पपीता, अनन्नास, अनार, अमरूद, फालसा, नाशपाती आदि।
मैग्नीशियम	कैल्सियम एवं फास्फोरस के पाचन के अलावा कई एन्जाइमों की क्रियाओं में इसकी उपस्थिति अनिवार्य है। तंत्रिका तंत्र एवं मांसपेशियों के उचित संचालन में भी इसका विशिष्ट स्थान है। इसकी कमी से मधुमेह एवं आँतों की बीमारी हो जाती है।	आलू बुखारा, केला, अंगूर आदि।
सल्फर	यह मांसपेशियों एवं हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक अमीनो एसिड एवं प्रोटीन बनाता है तथा जहरीले पदार्थों के दुष्प्रभाव को खत्म करता है।	कटहल, रसभरी, तरबूज आदि।
कॉपर	यह लोहे के अवशोषण एवं लोहे से संबंधित क्रियाओं में भाग लेता है। कई इन्जाइमों की क्रियाओं में इसकी उपस्थित आवश्यक है। तंत्रिका तंत्र में तांबा मुख्य रूप से उपस्थित रहता है।	सेब, अनार, पपीता, रसभरी, नाशपाती, शरीफा, संतरा, नीबू, केला आदि।
क्लोरीन	यह शरीर में अम्ल एवं क्षार का संतुलन बनाता है तथा पाचन तंत्र में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के निर्माण में सहायक होता है।	खुबानी, अनन्नास, स्ट्राबेरी आदि।
कैल्सियम	हमारे शरीर में दाँत एवं हड्डियों का अधिकांश भाग कैल्सियम का बना होता है। हड्डियों एवं शरीर के द्रवों में पाया जाता है। इसकी अल्पता से बच्चों में सूखा रोग एवं बड़ों में आस्टोमेलेशिया हो जाता है।	पपीता, नीबू, माल्टा, आँवला, अमरूद, कैथा, स्ट्राबेरी, बेल, बेर आदि।
पोटैशियम	यह प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायक होता है। यह क्षरीयता एवं अम्लता का सन्तुलन बनाये रखने में भी सहायता करता है। इसकी कमी से फेफड़ों की बीमारी हो जाती है।	कटहल, केला, खुबानी, अंगूर, अमरूद आदि।

उत्पादक बनाये रखना चाहिए।

- गृह वाटिका में प्रत्येक क्यारी के पास रास्ता होना भी आवश्यक है ताकि सस्य-क्रियाएँ आसानी से की जा सकें।
- गृह वाटिका में रसोई के जल का समुचित प्रयोग किया जाना चाहिए।
- गृह वाटिका में एक कोने पर कम्पोस्ट का गड्ढा भी होना आवश्यक है जिससे घर का

सारणी 3: फलों में उपलब्ध मुख्य विटामिन

विटामिन	महत्व	स्रोत फल
विटामिन ए	यह वृद्धि एवं प्रजनन क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी से, ठंड, इनफ्लूएन्जा आँख का रोग, रतौंधी तथा चर्म रोग होता है।	आम, पपीता, परशिमान, केला, अमरूद, रसभरी, फालसा, कटहल, अनन्नास, पैशन फल आदि।
विटामिन बी$_1$	इसकी कमी से बेरी-बेरी नामक रोग होता है। त्वचा का स्पर्श, शक्ति का ह्रास होता है तथा लकवा या हृदय संबंधी असामान्यताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।	सेब, केला, सन्तरा, आलू बुखारा, आम, अमरूद, पपीता आदि।
विटामिन बी$_2$	इसकी कमी से शरीर में बहुत सी असमान्यताएँ जैसे शरीर का भार कम होना, गले में खरास, मुँह के कोनों का फटना, आखों की नसे उभर आना एवं आँखों का किरकिराना आदि होते हैं।	बेल, पपीता, कैथा, लीची आदि।
विटामिन बी$_6$	यह कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं एमीनो अम्ल के पाचन में सहायक होता है इसकी कमी से अतिसार, बालों का गिरना, त्वचा का खुरदरी होना एवं मांसपेशियों का कमजोर पड़ना आदि विकार उत्पन्न होते हैं।	खुबानी, नीबू, केला, अंजीर आदि।
विटामिन सी	यह विटामिन शरीर को स्वस्थ रखने में परमावश्यक है क्योंकि यह न केवल शरीर की कोशिकाओं को एक दूसरे से जोड़ने में सहायक होता है परन्तु इसकी उपस्थिति में घाव भी जल्दी भरते हैं एवं टूटी हुई हड्डियाँ भी शीघ्र जुड़ जाती हैं। इसकी कमी से स्कर्वी रोग, जोड़ों में दर्द, मसूढ़ों का फूलना एवं दाँतों की सड़न एवं शरीर की रोग रोधी क्षमता घट जाती है।	आँवला, अमरूद, नीबू, बेर, सन्तरा आदि।
विटामिन बी$_{12}$	यह लाल रुधिर कणिकाओं के निर्माण में सहायक होता है। इसकी कमी से लाल रुधिर कणिकाओं की कमी हो जाती है जिससे एनीमिया हो जाता है।	एवोकैडो, केला, नीबू, चेरी, अमरूद आदि।

जैविक कचरा एकत्र कर उससे खाद बनायी जा सके एवं गंदगी से बचा जा सके। इसी गड्ढे के ऊपर छप्पर डालकर लता वाले फलों तथा सब्जियों को उगाया जा सकता है।

किसी भी गृह वाटिका में बागवानी के आम, अमरूद, आँवला, नीबू, पपीता, अंगूर, बेल, बेर, जामुन आदि के फल लगाये जा सकते हैं। गृह वाटिकाओं में आवश्यकतानुसार इन फलों की किस्में लगाकर पौष्टिक फल प्राप्त किये जा सकते है जिससे स्वस्थ्य जीवन जीने में मदद मिलेंगी। (सारणी 1)

ताजे फलों में फास्फोरस, लोहा, सोडियम, मैग्नीशियम, सल्फर, कॉपर, क्लोरीन, कैल्सियम, पोटेशियम आदि की मात्रा उपलब्ध होती है जिससे स्वस्थ्य शरीर संतुलित अवस्था में रहता है। ताजे फलों को खाने से शरीर में खनिजों की कमी को दूर किया जा सकता है। (सारणी 2)

ताजे तथा पौष्टिक फल शरीर में विटामिन ए, बी$_1$, बी$_2$, बी$_6$, विटामिन सी तथा विटामिन बी$_{12}$ की कमियों को दूर कर प्रतिरोधक क्षमता विकसित करते हैं। स्रोत फल तथा उनसे प्राप्त होने वाले विटामिन से रोगों का मुकाबला किया जा सकता है। (सारणी 3)

अमरूद में जैव विविधता-उत्तर प्रदेश की अमूल्य सम्पदा

शैलेन्द्र राजन[1], रामकुमार[2] एवं एल.पी. यादव[3]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

अमरूद विदेशी मूल (मध्य अमेरीका) का फल है। अपने प्रचुर फलन, उच्च्य विटामिन-सी युक्त फलों एवं बिना किसी विशेष देखरेख के बावजूद अधिक आय देने वाला होने के कारण भारत के उष्ण एवं उपोष्ण प्रक्षेत्रों में इसकी खेती का महत्व व्यावसायिक स्तर पर रहा है। विगत् वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, पोषकयुक्त एवं मूल्यवर्धित उत्पादों में वृद्धि के कारण अमरूद का चौथा स्थान रहा है। भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्रों एवं मूल रूप से उत्तर प्रदेश में अमरूद में जैव विविधता बहुतायत में पायी जाती है। अमरूद के सर्वोत्तम फल उत्तर प्रदेश में पैदा होते हैं। उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में उत्पादित अमरूद विश्व प्रसिद्ध हैं। अमरूद की जैव विविधता का उत्तर प्रदेश की संपदा एवं प्राकृतिक धरोहर के रूप में विश्व में प्रथम स्थान है। इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली ने भारत सरकार के सौजन्य से राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, नयी दिल्ली के नेतृत्व में केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के अमरूद उगाये जाने वाले क्षेत्रों का ग्राम स्तर पर सर्वेक्षण कर अमरूद की जैव विविधता का संकलन एवं मूल्यांकन किया इससे स्पष्ट होता है कि आज भी अमरूद की जैव विविधता उत्तर प्रदेश के सीतापुर, लखनऊ, अलीगढ़, हाथरस, बरेली, शाहजहाँपुर, पीलीभीत, लखीमपुर खीरी, मिर्जापुर, रामपुर, मुरादाबाद, बदाँयु, बुलन्दशहर, बिजनौर, कन्नौज, फरूखाबाद, हरदोई, फतेहपुर, कानपुर नगर, कानपुर देहात, उन्नाव, रायबरेली और सहारनपुर जिलों में पायी जाती है। किन्तु कौशाम्बी एवं इलाहाबाद के अमरूद जैव विविधता की अमूल्य सम्पदा के रूप में चिन्हित किये गये हैं। उत्तर प्रदेश में अमरूद की सर्वाधिक प्रजातियाँ बागवानों के यहाँ संरक्षित है जो विभिन्न गुणों के लिए जानी जाती हैं तथा उनका उपयोग किस्मों के सुधार में किया जा रहा है।

अमरूद की खेती लगभग 2.0 लाख हेक्टेयर में होती है जिससे लगभग 22.7 लाख टन फलों की उपज होती है। अमरुद की प्रसिद्ध प्रजातियों में इलाहाबाद सफेदा, सरदार, हफ्सी, एपिल कलर, नागपुर वेदाना, धारवाड़ आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ का नामकरण फलों के रूप, रंग, आकार एवं उत्पादन स्थान के अनुसार किया गया है।

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा अमरूद के पौधों की वृद्धि, उपज, भौतिकी एवं जैव रासायनिक गुणों का अध्ययन किया गया है। किस्मों का मूल्यांकन विभिन्न लोगों द्वारा किया गया तथा प्रजातियों द्वारा स्थापित

[1]प्रभागाध्यक्ष (फसल सुधार एवं जैव प्रौद्योगिकी), [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]शोध सहायक

मानकों को अभिलेखित किया गया है।

अमरूद की व्यावसायिक किस्में

इलाहाबाद सफेदा : इलाहाबाद की इस महत्वपूर्ण प्रजाति में बीज द्वारा प्रवर्धन के कारण विविधता प्रचुर रूप में होती है। फल आकार में बड़े, गोल, चिकने, श्वेत एवं पीले रंग के होते हैं। फल का गूदा सफेद, ठोस, मुलायम बीजयुक्त, उच्च मिठास एवं विटामिन-सी, अच्छे स्वाद एवं सुवासयुक्त होता है।

सरदार (लखनऊ-49) : इसके पेड़ बढ़ने वाले, अधिक शाखायुक्त, फैलावदार तथा अधिक फलन वाले होते हैं। फल आकार में बड़े, उभार लिये गोल, चमकीले पीले तथा सफेद गूदा वाले होते हैं। इसके बीज औसत संख्या वाले तथा मुलायम होते हैं। इसका स्वाद अच्छा एवं विटामिन-सी की प्रचुर मात्रा होती है।

ऐपल कलर : इसके फल का आकार मध्यम, रंग लाल, स्वाद मीठे एवं भंडारण क्षमता अच्छी होती है। इनके फलों में रंग के विकास के लिए निम्न ताप का होना आवश्यक होता है। पेड़ मध्यम आकार के किन्तु पत्तियाँ अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक गहरे हरे रंग की होती है। इसे सुर्खा नाम से भी जाना जाता है।

चित्तीदार : यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध प्रजाति है। बाह्य फल भित्ती पर लाल रंग की अनेक चित्तियाँ होती हैं। उच्च मिठास, छोटे से लेकर मध्यम एवं मुलायम बीज वाले गुणों के कारण जानी जाती है। इसके फल का आकार एवं रूप तथा गूदा इलाहाबाद सफेदा के अनुरूप होता है। इसमें मिठास इलाहाबाद सफेदा एवं सरदार से अधिक होती है, किन्तु विटामिन-सी की मात्रा इनकी अपेक्षा कम होती है। पेड़ इलाहाबाद सफेदा की भाँति होते हैं।

बेहट कोकोनट : फल बड़े, उभार लिये गोल, चमकीले पीले तथा सफेद गूदा वाले होते हैं। फलों का गूदा सफेद, बीज मुलायम तथा संख्या में कम होते हैं। इसके फल प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं।

बेदाना : बेदाना प्रजातियाँ-सहारनपुर बेदाना, नागपुर बेदाना एवं अन्य सभी मिलती जुलती किस्में हैं। इसमें दो प्रकार के फल पाये जाते है। एक बिल्कुल बीजमुक्त तथा दूसरे में कुछ बीज होते है। बीज मुक्त फल पेड़ की शाखाओं में बड़े आकार के तथा अनियमित अनुरूप पीले पतले छिलके वाले लगते है। फल का गूदा सफेद, अच्छे स्वाद एवं सुवासयुक्त होता है। कुछ बीज वाले फल साधारण शाखाओं में बाहरी भाग में छोटे आकार के गोल होते हैं। बेदाना प्रजाति व्यावसायिक खेती के लिये उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि इसकी उपज बहुत कम होती है।

लाल गूदा वाली किस्में

इलाहाबाद सुर्खा : इसके फल बड़े तथा छिलका एवं गूदा दोनों लाल रंग का होता है। इसके फल मीठे, कम बीज वाले, प्रसन्नचित्त सुवासयुक्त होते हैं। इसके पेड़ तेजी से बढ़ने वाले, अर्धवृत्ताकार तथा घने छायादार होते हैं।

हफ्सी : फल गोलाकार पतले छिलकेयुक्त तथा बड़े होते हैं। फल का गूदा लाल, अच्छे सुवास एवं स्वादयुक्त होते है। बीज की संख्या कम होती है और ये कड़े होते हैं।

रेड फ्लेशड : फल मध्यम आकार के लाल गूदा वाले तथा चिकने होते हैं। बीज अधिक परन्तु मुलायम होते हैं। फल मिठास वाले सुवासयुक्त तथा प्रचुर मात्रा में विटामिन-सी लिये होते हैं।

अनाकापल्ली : फल मध्यम आकार के पीले तथा लाल गूदायुक्त होते हैं। बीज प्रचुर मात्रा में तथा मुलायम होते हैं।

ललित : फल आकर्षित पीले रंग के जिसमें कभी-कभी लालिमा उभर आती है। यह मध्यम आकार के लगभग 200-250 ग्रा. वजन वाले होते हैं। यह इलाहाबाद सफेदा की तुलना में अच्छी उपज देने वाली किस्म है। फल का गूदा कड़ा एवं लाल रंग का तथा शर्करा एवं अम्लता की उपयुक्त मिश्रण वाला होता है। इसके फल खाने एवं प्रसंस्करण (जैली, बेवरेज) दोनों के लिए उपयुक्त होते हैं।

सुप्रिम : फल छोटे शंक्वाकार गोल हल्के पीले होते हैं। फलों का गूदा लालिमा एवं मिठासयुक्त होता है। यह शरबत के लिये अच्छी प्रजाति है।

पीले गूदे वाली किस्में

स्पीयर एसिड : इसके फल बड़े गोल तथा हल्के पीले गूदे वाले खट्टे होते हैं। यह पेक्टिन स्रोत के लिये संस्तुति किस्म है।

अमरूद की नवीन किस्में

श्वेता : यह प्रजाति केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा चयनित की गयी है। फल बड़े, गोल, श्वेत आभायुक्त पीले होते हैं। कभी-कभी फलों पर लालिमा भी उभर आती है। फल कम बीज वाले, मुलायम तथा सफेद गूदायुक्त होते हैं। फल अच्छे स्वाद, अधिक मिठास (14%) तथा विटामिन-सी (300 मि.ग्रा./100 ग्रा.) वाले होते हैं। यह अधिक उपज वाली किस्म है।

अर्का मृदुला : यह प्रजाति भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा चयनित की गयी है। यह किस्म इलाहाबाद सफेदा से विकसित की गयी है। फल मध्यम आकार के उत्तम एवं उच्च गुणवत्तायुक्त मिठास लिए होते हैं। फलों का गूदा सफेद, बीज मुलायम तथा संख्या में कम होते हैं। पेड़ मध्यम आकार के तथा अच्छी उपज देने वाले होते हैं।

पंत प्रभात : यह गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रोद्यौगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा चयनित किस्म है। पेड़ सीधे बढ़ने वाले, चौड़ी पत्ती तथा अधिक उपज वाले होते हैं। फल गोल, छिलका चिकना, हल्के पीले रंग के मध्यम आकार होता है। गूदा सफेद, छोटे बीजयुक्त जो सरदार की अपेक्षा मुलायम होते हैं। फलों का स्वाद मीठा, सुवास युक्त तथा 125-300 मि.ग्रा. विटामिन-सी प्रति 100 ग्रा. होता है।

धारीदार : इसका चयन पुराने बीजू पेड़ से मध्य प्रदेश के रीवा जिले में किया गया है। पेड़ भारी, मध्यम लम्बे, सीधे एवं शाखायें ऊपर की ओर सीधी एवं फैलावदार होती है। फल मध्यम से बड़े लगभग 195 ग्राम, गोल तथा पांच से सात धारीयुक्त होते

हैं। फलों का रंग हरापन के साथ पीला होता है। गूदा मुलायम तथा मीठा तथा विटामिन-सी लगभग 200 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा. पाया जाता है।

संकर किस्में

अर्का अमूल्या (बेदाना × इलाहाबाद सफेदा): यह संकर किस्म भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलौर द्वारा विकसित की गयी है। इसके पेड़ अधिक उपज वाले औसत सुडौल होते हैं। फल मध्यम आकार (180-200 ग्रा.) एवं श्वेत तथा मीठे (12.5%) गूदे वाले छोटे (100 बीजभार-1.8 ग्रा.), मुलायम एवं कम बीजयुक्त होते हैं।

सफेद जाम (इलाहाबाद सफेदा×कोहिर) : यह फल अनुसंधान केन्द्र, संगारेड्डी, आन्ध्र प्रदेश द्वारा विकसित संकर किस्म है। पेड़ मध्यम ऊँचाई एवं भारी उपज देने वाले होते हैं। फल गोल, पतले छिलके एवं मुलायम बीज तथा अच्छे स्वादयुक्त होते हैं।

कोहिर सफेद (कोहिर × इलाहाबाद सफेदा) : इसके पेड़ बड़े आकार के अर्धवृत्ताकार होते हैं। इसके फल खटासयुक्त तथा अपने माता-पिता से बड़े आकार के होते हैं।

जैव विविधता की किस्म सुधार में उपयोगिता

भारत में पहले अमरूद को बीज द्वारा प्रवर्धित किया जाता था, जिससे फलों के आकार, प्रकार, गूदे का स्वाद, बीज की मात्रा तथा अन्य लक्षणों में कई प्रकार की विविधतायें उत्पन्न हो गयी। कई व्यावसायिक खेती करने वालों ने वांछित किस्मों का चुनाव कर इन्हें कायिक प्रवर्धन द्वारा प्रसारित किया। इस प्रकार विकसित भारत की प्रजातियाँ जैसे इलाहाबाद सफेदा तथा सरदार ने विश्व के अनेक भागों में उत्तम प्रदर्शन किया है।

भारत में सर्वप्रथम अमरूद सुधार का कार्य 1907 में चयन द्वारा गणेशखिण्ड (पुणे) में किया गया। यह कार्य मुख्य रूप से विभिन्न स्थानों में उगायी जाने वाली किस्मों के बीज को एकत्रित कर उच्च गुणों वाली प्रजातियों के चयन पर केन्द्रित था। लखनऊ से एकत्रित इलाहाबाद सफेदा के बीजू पौधों के चुनाव पर लखनऊ-49 के नाम से विकसित किया गया तथा पुनः इसका नाम सरदार रखा गया। सन् 1953 में फल अनुसंधान केन्द्र, सहारनपुर से एस-1 प्रजाति चयन द्वारा विकसित की गयी, जिसके आकार में फल बड़े, मीठे, स्वादयुक्त, कम बीज तथा अच्छी उपज वाले हैं। 1988 में बीजू पौधों के वरण से विकसित अर्का मृदुला (सलेक्शन-8) नामक प्रजाति भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर में अच्छा प्रदर्शन कर रही है।

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में इलाहाबाद क्षेत्र से एकत्रित परपरागित लाल रंग के फलों से उत्पन्न बीजू पौधों के गुणों का मूल्यांकन किया गया। इनमें से तीन लाल रंग के तथा अन्य दो उच्च उत्पादक क्षमता वाले पाये गये। सी.आई.एस.एच.-जी-3 को ललित तथा सी.आई.एस.एच.-जी-4 को श्वेता नाम दिया गया। इसी प्रकार गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रोद्यौगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर से पंत प्रभात तथा कुठुलिया फल अनुसंधान केन्द्र, रीवा, मध्य प्रदेश से धारीधार प्रजाति विकसित की गयी है।

सामान्यतः देखा गया है कि कुछ खास प्रजातियों का ही उत्पादन किया जा रहा है। अधिकतर इन प्रजातियों में एक या दो कमियाँ हैं, इसलिये अमरूद में प्रजनन मुख्य रूप से अधिक उत्पादन देने वाले, उच्च गुणवत्तायुक्त, बौनी प्रजातियों का विकास जिसके फल समरूप, आकर्षक लाल रंग के छिलके तथा गूदे वाले, कोमल एवं कम बीज वाले, उकंठारोधी, दीर्घ भंडारण क्षमता युक्त तथा ताजे खाने और प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त प्रजातियों के विकास के लिये किया जा रहा है। अमरूद की नवीन प्रजाति के विकास हेतु उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली जैव विविधता का उपयोग देश के विभिन्न शोध संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों में किया जा रहा है।

जैव सम्पदा संरक्षण हेतु जरूरी कदम

- ऐसे विशेष जनन द्रव्यों से वानस्पतिक विधि द्वारा और पेड़ तैयार कर घरों के आस-पास सार्वजनिक बंजर भूमियों, स्कूल या ग्राम पंचायत के स्वामित्व वाली जमीनों में रोपित करें।
- उपयुक्त स्थान की उपलब्धता न होने पर कई प्रजातियों का संरक्षण एक ही पेड़ पर कलम बाँधकर किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त विशेष जनन द्रव्यों के गुणों के वर्णन के साथ पौधे की मातृ सांकुर डाली को निदेशक, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ अथवा निदेशक, राष्ट्रीय पादप अनुसंधान ब्यूरो, नयी दिल्ली को स्वयं या किसी माध्यम से प्रस्तुत करें।
- इस प्रकार के विशेष गुणों वाले पौधों के संदर्भ में विशेष जानकारी तथा संरक्षण हेतु निदेशक, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, काकोरी, लखनऊ से सम्पर्क स्थापित करें। आपका यह सहयोग बेशकीमती एवं सराहनीय हो सकता है।

सम्भावनायें

- अन्तरप्रजातीय संकरण में न्यून बीजयुक्त उत्परिवर्तन द्वारा किस्मों का विकास सम्भव है। द्विगुणित तथा उच्च व्यवसायिक प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिये, जिससे उच्च गुणवत्तायुक्त न्यून बीज वाली प्रजातियों का विकास किया जा सके।
- अन्तरजातीय संकरण कार्य में अधिक प्रगति करनी चाहिये।
- उकठा रोधी प्रजातियाँ विकसित किये जाने के प्रयास करने चाहिये, जिनमें स्वंय जड़ें निकालने की व्यवस्था की जा सके।
- एन्युप्लायडी प्रजनन का प्रयास करना चाहिये, जिससे उच्च गुणवत्तायुक्त, कम तथा कोमल बीजों वाली प्रजातियों तथा बौने मूलवृन्तों का विकास किया जा सके।
- कम बीजों वाले उच्च गुणों वाली द्विगुणित प्रजातियों से स्वचतुर्गणित विकसित किये जा सके।
- भौतिक तथा रासायनिक उत्परिवर्तकों द्वारा उत्परिवर्तन कराने का प्रयास करना चाहिये, जहाँ किसी लोकप्रिय प्रजाति में किसी विशेष गुण का विकास किया जा सके।

आम और अमरूद के लिए जस्ता की उपयोगिता

कैलाश कुमार[1], तरुण अदक[2] एवं विनोद कुमार सिंह[3]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

पौधे अपने जीवन के लिए मृदा से जल एवं पोषक तत्व, वायु से कार्बन डाईआक्साइड और सूर्य से प्रकाश ऊर्जा लेकर भोजन का निर्माण करते हैं। मृदा से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन पोषक तत्वों को पौधे अपनी जड़ों द्वारा अवशोषित करते हैं। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए मृदा में आवश्यक पोषक तत्व घुलनशील एवं उपलब्ध अवस्था में होने चाहिए। मृदा के घोल में तत्वों की उचित मात्रा के साथ-साथ उनका सन्तुलन भी पौधों की बढ़वार के लिए अनुकूल होना चाहिए। मृदा में पोषक तत्वों के ह्रास के मुख्य कारण हैं पौधों द्वारा उपयोग, मृदा-क्षरण से पोषक तत्वों का बह जाना, लीचिंग (उद्धीलन) द्वारा नष्ट होना एवं वाष्पीकरण और सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा पोषक तत्वों का उपयोग किया जाना।

मृदा में पोषक तत्वों की प्राप्ति पौधों के अवशेषों, उर्वरकों/खादों और वर्षा के जल द्वारा होती हैं। जस्ता एक सूक्ष्म पोषक तत्व है जो पौधों के जीवन चक्र हेतु आवश्यक है। यह मृदा में जिंकाइड, कैलामिन, जस्ता सल्फाइड और विलेमाइट इत्यादि खनिजों के रूप में पाया जाता है। यह मृदा विलयन में घनायन के रूप में कम मात्रा में मिलता है। जस्ता की पौधों को प्रात्यता करने वाले कारकों में मृदा पी. एच., मृदा में फासफोरस की मात्रा तथा मृदा कार्बनिक पदार्थ प्रमुख हैं। जस्ता की कमी से पौधों की वृद्धि रूक जाती है जिससे उत्पादन प्रभावित होता है और उपज की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है।

जस्ता के कार्य

फल वृक्षों के जीवन चक्र को पूरा करने एवं उनकी अच्छी बढ़वार के लिए कुछ निश्चित तत्वों की जरूरत होती है। इन तत्वों को आवश्यक तत्व कहते हैं। जो तत्व पौधों द्वारा बहुत कम मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं वे सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्व विशेष रूप से पौधों के विकास में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। यह विटामिनों एवं एन्जाइमों के निर्माण के साथ ही पौधों में रोगों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। जड़ों द्वारा अवशोषण कार्य के अतिरिक्त मजबूती भी प्रदान करते हैं। जस्ता के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं।

- पौधों में कार्बोहाइड्रेट के वाहन में सहायक है।
- पौधों में पानी अवशोषण की क्षमता को बढ़ाता है।
- पौधों में ऑक्सीकरण में सहायता करता है।
- प्रोटीन और कैरोटीन के संश्लेषण में सहयोग करता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक एवं [3]तकनीकी अधिकारी

- एमिनो एसिड के संश्लेषण में सहायक होता है।
- विभिन्न एन्जाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।

पौधों में जस्ता की कमी के लक्षण

जस्ता की कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियाँ छोटी एवं पीली गुच्छों के रूप में निकलती हैं। पत्तियों का रंग धुंधला पीला हो जाता है। फलों का आकार छोटा हो जाता है। अधिक कमी होने पर शाखाएँ भी ऊपर से सूखना प्रारम्भ कर देती हैं जिससे पेड़ कमजोर हो जाते हैं।

फल वृक्षों में जस्ता की कमी का पता लगाना

आवश्यक पोषक तत्व मृदा में उपस्थित होते हुए भी विभिन्न कारणों से पौधों को प्राप्त नहीं हो पाते हैं जिससे मृदा पोषक तत्वों का सन्तुलन बिगड़ जाता है। मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा पौधों को उनकी उपलब्धता तथा मृदा में पोषक तत्वों का सन्तुलन मृदा उर्वरता के प्रमुख अंग होते हैं। इनका उचित प्रबन्ध कर अच्छा फलोत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पौधों की बढ़वार के लिए आवश्यक है कि मृदा में आवश्यक पोषक तत्व घुलनशील एवं उपलब्ध अवस्था में होने के साथ-साथ पर्याप्त सान्द्रता में हों जिससे विभिन्न पोषक तत्वों का मृदा घोल में सन्तुलन पौधों की बढ़वार के अनुकूल बन सके।

पोषक तत्वों की कमी का पता मृदा की जाँच एवं पौधों के विभिन्न भागों का विश्लेषण कर लगाया जा सकता है। जाँच से मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा का पता लगता है लेकिन पौधों की उपलब्धता हो पा रही है या नहीं इसका सही आँकलन नहीं हो पाता है। पौधों द्वारा पोषक तत्वों का मृदा से अवशोषण मृदा तापमान, नमी का उतार-चढ़ाव और मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता का ज्ञान पौधों में पोषक तत्वों की सुलभता से भिन्न होता है। अधिकांश फल वृक्षों में उनकी पत्तियों का विश्लेषण कर पोषक तत्वों के स्तर का पता लगाया जाता है। आम एवं अमरूद की पत्तियों का नमूना लेने की मानक सारणी-1 में दिया गया है। पत्तियों का विश्लेषण प्रतिवर्ष कराना चाहिए जिससे पौधों में तत्व की कमी या आधिक्य के बारे

सारणी 1: आम और अमरूद की पत्तियों का नमूना लेने के मानक

फसल	नमूना हेतु ऊतक	स्थिति	आयु	समय	अवस्था	नमूने का आकार
आम	पत्ती	कल्ले के मध्य भाग से	5–7 माह पुराने	सितम्बर	पेड़ के चारों ओर से प्ररोही टहनियों से	कम से कम 30 पत्तियाँ
अमरूद	पत्ती	ऊपर से पत्ती का तीसरा या चौथा जोड़ा	50–60 दिन पुराने	वर्षा ऋतु की फसल के लिये जून–जुलाई और शीत ऋतु की फसल के लिये अक्टूबर–नवम्बर	पेड़ के चारों ओर से प्रजनक टहनियों से	कम से कम 30 पत्तियाँ

सारणी 2: आम और अमरूद की पत्तियों में जस्ते का मानक स्तर (पी.पी.एम.)

फसल	कमी	सामान्य	अधिकता
आम	15–19	20–200	>200
अमरूद	20–24	25–200	>200

में मालूम हो सके। मृदा एवं पत्तियों के परीक्षण के आधार पर खाद एवं उर्वरक देने से गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त की जा सकती है। आम की पत्तियों में जस्ता की मात्रा 20-200 पी.पी.एम. और अमरूद की पत्तियों में 25-200 पी.पी.एम. पर्याप्त मानी जाती है (सारणी-2)। इससे ऊपर या नीचे होने से पौधों की बढ़वार प्रभावित होने के साथ फल की उपज एवं गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

पौधों में जस्ता उर्वरकों का प्रयोग

पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि उनका प्रयोग उचित समय पर किया जाये। फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरक देने के समय का निर्धारण बहुत महत्वपूर्ण है। उचित समय पर खाद/उर्वरक नहीं देने पर पौधों की वृद्धि, फलत और फलों की गुणवत्ता तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आम और अमरूद मुख्यतः बलुई या बलुई दोमट मृदाओं में लगाये जाते हैं। इस तरह की मृदा में प्रायः जस्ते की कमी पायी जाती है। पर्ण विश्लेषण से यदि जस्ते की कमी का पता चलता है तो पौधों में जस्ता उर्वरक जिंक सल्फेट का प्रयोग कर इसकी कमी दूर की जा सकती है। आम के पेड़ों में जिंक सल्फेट 200-250 ग्रा. प्रतिवृक्ष (10-15 वर्ष या उससे ऊपर) तथा अमरूद के पेड़ों में 75-100 ग्रा. प्रतिवृक्ष की दर से चारों ओर नालियाँ बनाकर (थालों) प्रयोग करना चाहिये।

मृदा में जस्ता की बहुत अधिक कमी न होने पर जिंक सल्फेट के 1.0 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से भी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। आम में पहला छिड़काव फल का आकार मटर के दाने के बराबर होने पर एवं उसके बाद 15-15 दिन के अंतराल पर दो बार करना चाहिए। अमरूद में बरसात की फसल के लिए छिड़काव जून-जुलाई तथा सर्दियों की फसल के लिए सितम्बर-अक्टूबर में करना चाहिये।

आम एवं अमरूद के छोटे पौधों में जस्ते की कमी होने पर वर्ष में 2-3 बार छिड़काव करने से पौधे स्वस्थ बने रहेंगे। इस तरह आम एवं अमरूद के वृक्षों में जस्ते का अधिक पोषण प्रबन्धन कर अच्छी एवं गुणवत्तायुक्त उपज प्राप्त की जा सकती है।

आम में पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा/दहिया) रोग प्रबंधन

बी.के. पाण्डेय[1]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

पाउडरी मिल्ड्यू के (अ) पत्तों, (ब) पुष्प समूह तथा (स) फलों पर लक्षण

पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा/दहिया) *ओडियम मैंजीफेरी* नामक फफूँद से होने वाला एक महत्वपूर्ण एवं गंभीर रोग है। इस रोग के अत्यधिक संक्रमण से फल उत्पादन में 50 प्रतिशत से ज्यादा कमी आ सकती है। इस रोग की शुरूआत फरवरी के प्रथम सप्ताह से मार्च के तृतीय सप्ताह तक होती है। इस रोग के लक्षण बौरों, पुष्पक्रमों की डंठल, नयी पत्तियों तथा फलों पर देखे जा सकते हैं। इस रोग का विशेष लक्षण सफेद कवक या चूर्ण के रूप में प्रकट होना है जिनके ऊपर अनगिनत कोनिडिया (बीजाणु) लड़ी में कोनिडियोफोर पर लगे होते हैं। यह रोग वायु वाहित कोनिडिया के द्वारा फैलता है। फफूँद का आक्रमण नयी पत्तियों पर तब होता है जब उनका रंग बैंगनी भूरा से हल्का हरा होने लगता है एवं पत्तियों के दोनों तरफ छोटे स्लेटी धब्बे के रूप में रोग दिखता है। रोग के लक्षण स्पष्ट रूप से पत्तियों की निचली सतह पर दिखते हैं। रोग की सबसे गम्भीर अवधि पुष्पन के समय होती है जब फफूँद के आक्रमण से फूल गिरते हैं। इसके प्रभाव से फूल खिल नहीं पाते तथा गिरने लगते हैं जिससे

[1]प्रधान वैज्ञानिक

फसल को भारी क्षति होती है। नये फलों पर पूरी तरह सफेद चूर्ण फैल जाता है। इसकी अधिक बढ़त होने पर फल की ऊपरी सतह फट जाती है और खुरदरी हो जाती है। मटर के दाने के बराबर हो जाने के बाद फल पेड़ से झड़ जाते हैं। इस रोग के फैलने के लिए अधिकतम तापमान 35 डिग्री सें.ग्रें., न्यूनतम तापमान 15-17 डिग्री सें.ग्रें., सापेक्ष नमी 50-60 प्रतिशत तथा हवा की रफतार 2-5 कि.मी. होनी चाहिए। यह स्थिति सामान्यतया उत्तर भारत में मार्च के मध्य में होती है।

प्रबंधन

रोगग्रसित पत्तियों और गुम्मा ग्रसित पुष्प गुच्छों की छँटाई से प्राथमिक रोगकारक की मात्रा को कम किया जा सकता है। जिसके बाद रासायनियक नियंत्रण ही अधिक लाभप्रद होता है। पाउडरी मिल्ड्यू के नियंत्रण के लिए घुलनशील सल्फर (0.2%, 2 ग्रा./ली. पानी) का प्रथम छिड़काव निरोधक के रूप में तब करें जब पुष्पगुच्छ 8-10 सें.मी. आकार का हो जाये। दूसरा छिड़काव डिनोकेप (0.1%, 1 मि.ली./ली. पानी) का पहले छिड़काव के 10-15 दिनों के बाद करें। आवश्यकतानुसार तीसरा छिड़काव ट्राईडीमार्फ (0.1%, 1 मि.ली./ली. पानी) का दूसरे छिड़काव के 10-15 दिनों के पश्चात किया जाना चाहिये। यदि पाउडरी मिल्ड्यू का प्रकोप कम हो तो तीनों छिड़काव में घुलनशील सल्फर का प्रयोग कर सकते हैं। पूर्ण पुष्पन की अवस्था में फफूँदनाशी का छिड़काव नहीं करना चाहिए। यद्यपि रोग प्रबंधन के लिए तीन छिड़काव संस्तुत हैं किन्तु रोग के फैलने के समय को पहचान कर एक या दो छिड़काव के द्वारा भी रोग प्रबंधन किया जा सकता है।

आम की अज्ञात बीमारियाँ तथा फूल वाले परजीवी पौधे एवं अधिपादप

ए.के. मिश्र[1] एवं ओम प्रकाश[2]
केन्द्रीय उपोषण बागवानी संस्थान, लखनऊ

किसी भी पौधे में अनेक कारणों से रोग लग सकते हैं। आमतौर पर फफूँद, जीवाणु, विषाणु आदि जैविक कारक से रोग होते हैं किन्तु दैहिक विकार भी रोग का कारक होता है। पोषक तत्वों की कमी या अधिकता से या पौधों पर विषैली गैसों आदि के प्रकोप से दैहिक विकार होते हैं। पौधों में रोग के वातावरणीय कारण भी होते हैं। इन रोगों तथा विकारों के कारण तो ज्ञात होते हैं किन्तु कुछ ऐसे भी रोग होते हैं जिनके कारकों की जानकारी अभी तक नहीं हो सकी है। आम में भी कुछ ऐसे रोग/विकृतियाँ देखी गयी हैं जिनके कारणों की अभी तक जानकारी नहीं हो पायी है। ऐसे ही कुछ रोगों का विवरण यहाँ दिया गया है। इसके अलावा फसल को क्षति पहुँचाने वाले आम के पौधों पर लगने वाले कुछ परजीवी तथा अधिपादप का भी वर्णन भी इस लेख में किया गया है।

झुमका

इस विकार में मंजरियों/बौरों पर गुच्छों में बीज रहित फल लगते हैं। ऐसे फल मटर के दाने के आकार तक के होते हैं तथा पुष्पवृन्त के आखिरी सिरे पर बनते हैं। इस प्रकार के छोटे फल गहरे हरे रंग के होते हैं। विकसित होने वाले सामान्य फलों के रंग हरे होते हैं। अधिक समय तक लगे रहने के कारण ऐसा समझा जाता है कि फसल अच्छी होगी किन्तु ऐसे फल अधिक नहीं बढ़ते हैं। पुष्पवृन्त पर कुछ अधिक समय तक लगे रहने पर फल बाद में गिर जाते हैं। यद्यपि इसके निम्नलिखित कारण बताये गये हैं, किन्तु इसके लिए और अधिक गहन अनुसंधान की आवश्यकता है।

- परागण तथा निषेचन का नहीं होना। असामान्य मौसम या अधिक कीटनाशकों का प्रयोग इसका कारण हो सकता है।
- फल बैठने के समय वानस्पतिक नयी वृद्धि होने से पोषण नयी वृद्धि की तरफ जाता है जिसके कारण फलों के भ्रूण नष्ट हो जाते हैं तथा बाद में फल गिर जाते हैं।

प्रबंधन

- बाग में कीटनाशी दवाओं का अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

[1]परियोजना समन्वयक (उपोष्ण फल) एवं [2]तकनीकी अधिकारी

- पूर्ण रूप से खुले हुए फूलों (बौर/मंजरी) पर कीटनाशकों का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- फूल खिलने के समय लाभदायक/परागण कीटों की संख्या बढ़ानी चाहिए।

काष्ठीय वृक्षवृण

पश्चिम बंगाल के मालदा, कर्नाटक के बंगलौर तथा उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में काष्ठीय वृक्षवृण की समस्या लंगड़ा, पैरी, गुलाब जामुन, महमूदा विकाराबाद आदि आम की किस्मों में देखी गयी है। विशेष रूप से पुराने पेड़ों के मुख्य तनों तथा द्वितीयक शाखाओं पर छोटे या बड़े आकार के वृक्षवृण पाये जाते हैं। ये विभिन्न माप तथा आकार के होते हैं (चित्र-2)। इनका व्यास 28-40 से. मी. तक पाया गया है तथा प्रभावित पेड़ के मुख्य तने पर खुरदरापन भी देखा गया है। वृक्षवृण से ग्रस्त शाखाएँ मरती हुई देखी गयी हैं। एक शाखा पर 10-15 वृक्षवृण तक पाये जाते हैं। प्रारम्भ में वृक्षवृण हरे रंग के होते हैं लेकिन कालान्तर में उम्र बढ़ने के साथ-साथ भूरे से काले हो जाते हैं। अधिक वृक्षवृण से शाखाएँ धीरे-धीरे मरने लगती हैं।

प्रबंधन

प्रभावित पेड़ों के तनों तथा शाखाओं से वृक्षवृण हटाना चाहिए। बाद में, कटे हुए स्थानों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड तथा कीटनाशक मिला कर लेप लगाने की संस्तुति की जाती है।

तने से रिसाव

वर्षा ऋतु में पश्चिम बंगाल के मालदा क्षेत्र में फरक्का तटबंध के निकट आम के बागों में अधिक पानी भरा होने के कारण किशन भोग, गोपाल भोग तथा हिमसागर प्रजातियों में पेड़ों के तनों से रिसाव के लक्षण पाये जाते हैं।

प्रायः जमीन की सतह से लगभग 30 से. मी. ऊपर तने में पाये जाने वाली दरारों से भूरे रंग का जलीय द्रव बहता हुआ दिखायी पड़ता है जो बाद में सूख कर काले रंग की पपड़ी में परिवर्तित हो जाता है। संक्रमित ऊत्तकों को खुरचने पर इन स्थानों पर पीले-भूरे धब्बे दिखायी पड़ते हैं। प्रभावित भाग में संक्रमण के कारण बड़े छेद भी हो जाते हैं।

प्रबंधन

पेड़ के तने पर प्रत्येक वर्ष कॉपर ऑक्सी-क्लोराइड का लेप तीन बार लगाना लाभकारी होता है।

छाल का फटना

उत्तर प्रदेश के बिजनौर तथा पश्चिम बंगाल के मालदा जिले में यह रोग पुराने पेड़ों में बहुतायत में पाया जाता है। 5-6 वर्ष से कम उम्र के पौधों में

यह कम होता है। छाल फटने के लक्षण गोंद निकलने की समस्या से भिन्न पाये जाते हैं। इसमें तने (धड़) पर गहरी लम्बवत् दरारें पड़ जाती हैं जिनकी लम्बाई 15-45 से. मी. तक हो सकती है। छाल की सड़न इससे (दरार बनने से) संबंधित नहीं होती है, किन्तु छाल के नीचे पायी जाने वाली लकड़ी में अधिक संख्या में दबे हुए गढ्ढे बनते हैं। दरारों के बीच गोंद की थैलियाँ पायी जाती हैं। बाद में छाल सूख जाती है तथा तने से हट जाती है। तत्पश्चात पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती हैं, जिससे ऊपर से शाखाएँ सूखने लगती हैं।

प्रबंधन

- पेड़ों पर 0.03% कॉपर ऑक्सीक्लोराइड फफूँदनाशी का छिड़काव करने की संस्तुति की जाती है।
- मिट्टी में 500 ग्रा. कॉपर सल्फेट प्रति पेड़ (15-30 वर्ष के पेड़ों में) डालने से छाल फटने की समस्या में कमी आती है।
- जिन बागों में यह अनियमितता साधारणतया पायी जाती है उनके पेड़ों की मरी हुई छाल हटा कर बोर्डो पेस्ट लगाना चाहिए।

छाल निकलना

मूलवृन्त के संपूर्ण तने पर लम्बवत् बिखरी हुई दरारें बनने से छाल निकलती है। प्रभावित छाल की बाहरी पर्त मुड़ी होती है तथा गोंद निकलता हुआ दिखायी देता है। ऐसी दरारें काफी गहरी होती हैं। प्रभावित ऊतकों में ऊतकक्षयी एवं आवश्यकता से बड़े ऊतक दिखायी देते हैं। अधिक समय तक ऐसी दशा बने रहने से पेड़ मर जाते हैं।

प्रबंधन

मूलवृन्त के तने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाने की संस्तुति की जाती है।

पत्तियों का मरोड़

इसका मुख्य लक्षण विषाणु संक्रमण की भाँति होता है। 5-6 वर्ष के संक्रमित पेड़ों पर कटे हिस्सों के किनारों से सीधी नयी टहनियाँ निकलती हैं। इन पर कोमल हल्के लाल रंग की पत्तियों का पर्णवृन्त बढ़ जाता है। पत्तियाँ पतली होती हैं तथा इन पर अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ जाती हैं। पत्तियों की निचली सतह का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक शिराएँ फूल जाती हैं जिससे प्रभावित पत्तियाँ मुड़ी हुई एवं कुंचित हो जाती हैं। रोग की अधिकता में पत्तियों पर विभिन्न प्रकार के

ऊतकक्षयी धब्बे बन जाते हैं। वृद्धि में रूकावट होने के कारण टहनियाँ छोटी रह जाती हैं। पत्तियों में विकृतियाँ बनने के कारण पत्तियाँ फर्न की भाँति दिखायी देती हैं।

प्रबंधन

इसके नियंत्रण हेतु प्रभावित पत्तियों को तोड़ कर नष्ट करने के बाद कार्बेन्डाजिम (0.1%) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3%) का छिड़काव करने की संस्तुति की जाती है।

चपटी टहनी

लखनऊ के आसपास के क्षेत्रों में नवोद्‌भिद पौधों तथा बढ़ते हुए पेड़ों में हथेली जैसी चिपटी हुई शाखाएँ पायी गयी हैं। इस अनियमितता के कारण टहनी का भाग चपटा हो जाता है तथा पंखे जैसा लगता है। अंकुरण के बाद नये कोमल/मुलायम पौधे चपटे हुए तने में बदल जाते हैं व उनमें उभरी हुई धारियाँ बनती हैं तथा बाद में सूई जैसी पतली पत्तियाँ बन जाती हैं। चपटा समतल भाग झाड़ू जैसा दिखायी देता है। चपटे हुए भाग से कुछ साधारण आकृति की पत्तियाँ भी निकलती हैं। यह रोग नवोद्‌भिद पौधों की अपेक्षा बड़े पेड़ों में भी पाया जाता है। रोगग्रसित पौधों की टहनियों की ऊपर की वृद्धि रुक जाती है और टहनियाँ चपटी एवं

माँसल हो जाती हैं। चपटे हुए तने के आखिरे सिरे लहरदार हो जाते हैं तथा इनके सिरे पर साधारण पत्तियाँ गुच्छे में निकलती हैं। समान्यतया पत्तियों में विकृति के कारण पत्तियाँ फर्न की पत्तियों जैसी दिखती हैं।

प्रबंधन

नये नवोद्‌भिद पौधे तथा पेड़ों के प्रभावित भाग को काट कर नष्ट कर देना चाहिए तथा कटे हुए स्थान पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए।

फलों की अर्ध सफेदी

उत्तर प्रदेश के लखनऊ एवं सहारनपुर जिलों में आम के फलों पर अर्ध सफेदी देखी गयी है। इस अनियमितता में फलों के आधे भाग का रंग मुख्यता सफेद तथा शेष भाग का सामान्य रंग (हरा) होता है। दूर से देखने पर भी यह स्पष्ट दिखायी देता है। एक ही पेड़ के कुछ फलों में इस प्रकार की अनियमितता पायी जाती है, जबकि अन्य फल साधारण फलों जैसे ही दिखायी देते हैं। यह अनियमितता उत्परिवर्तन के कारण हो सकती है।

विकृत फल

इस प्रकार की आकृति-विकृति दशहरी प्रजाति के फलों में देखी गयी है। आकृति-विकृति का कारण वातावरणीय या आनुवंशकीय प्रभाव हो सकता है

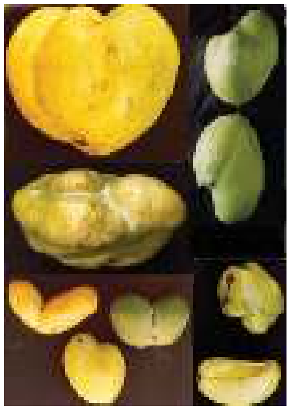

साथ ही निषेचन के समय हुई विकृति भी हो सकती है। इसमें 2-3 फल जुड़े हुए हो सकते हैं या फलों की सतह विभिन्न प्रकार की उभारयुक्त हो जाती है। इस विकृति में गुठली के आकार में भी विकृति देखी गयी है या 2-3 गुठलियाँ आपस में जुड़ी हुई हो सकती हैं।

फलों का फटना

आम के फलों में फटन की समस्या प्रायः दिखायी देती है जो फसल को बहुत नुकसान पहुँचाती है। लखनऊ में इसकी समस्या करीब 2 से 5 प्रतिशत तक पायी गयी है। दशहरी, लंगड़ा और चौसा किस्मों के फलों के फटने की समस्या फलों के बड़े होने पर पायी जाती है।

आम के फलों में चार प्रकार की फटन देखी गयी है। ये फटन लम्बवत्, अनुप्रस्थ, आड़ी-तिरछी (त्रिर्यक) या मिश्रित हो सकती है। लम्बवत् फटन लम्बाई में होती है तथा फलों के निचले सिरे पर सामन्यतः होती है। कभी-कभी दूरस्थ से समीपस्थ सिरे तक पूर्ण फल भी इससे प्रभावित होता है। प्रायः ऐसी फटन अन्य फटन की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। अनुप्रस्थ प्रकार की फटन में फल परिधि/गोलाई में फटते हैं तथा इस प्रकार की फटन कम होती है। कभी-कभी छोटे फलों में त्रिर्यक फटन भी देखी गयी है। अधिक फटन होने पर फल के बीज भी दिखायी देने लगते हैं। कीटों एवं बीमारियों के प्रकोप से फटन की समस्या में विकास देखा गया है जिससे फल खाने योग्य नहीं रह जाते हैं।

आम के फलों में फटन की समस्या वातावरण, हार्मोन, किस्म तथा पोषकीय तत्वों के कारण हो सकती हैं। दिन तथा रात के तापमान एवं आपेक्षित आर्द्रता में अधिक अन्तर के कारण भी यह समस्या बढ़ सकती है। मिट्टी में नमी, मूलवृन्त की बीमारियाँ एवं कीड़े या यांत्रिक चोट इस समस्या को बढ़ाते हैं।

फलों का ट्यूमर

इस विकार के लक्षण आमतौर पर आम की बहुभ्रूणीय एवं दशहरी किस्मों के फलों पर देखे गये हैं। उभारयुक्त वृद्धि फलों के दूरस्थ सिरे से प्रारम्भ होती है तथा कभी-कभी कंधों पर भी देखी जाती है। उभार बढ़ने पर यह हल्के रंग का हो जाता है। ऐसे प्रभावित फलों की सतह खुरदरी दिखायी देती है, जिससे फल भद्दे दिखते हैं। विकार के बढ़ने पर बाह्य उभरे हुए भाग की सतह मृत नजर आती है तथा उस पर गहरी दरारें बन जाती हैं। फलों पर पाये जाने वाली दरारों से गोंद निकलने के लक्षण पाये जाते हैं। ऐसे ऊतकक्षयी छिलके भुरभुरे तथा गहरे भूरे रंग के हो जाते

हैं और टुकड़ों के रूप में पपड़ियाँ आसानी से निकल जाती है जिससे अन्दर के ऊतक दिखायी देने लगते हैं। इससे गूदा फफूँद से ग्रसित हो कर सड़ जाता है जिसके फलस्वरूप परिपक्वता से पूर्व ही फल गिर जाते हैं।

फलों का छोटा रह जाना

उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले में चौसा किस्म में इसके लक्षण देखे गये हैं। काठ सड़ाने वाली फफूँद से प्रभावित शाखाओं पर छोटे एवं विकृत आकार के फल देखे गये, जबकि उसी पेड़ की अन्य स्वस्थ शाखाऐं जो काठ सड़ाने वाली फफूँद से मुक्त थीं, उनमें सामान्य फल लगे पाए गये। इस अनियमितता में फलों का आकार छोटा तथा विकृत हो जाता है। फलों का आधा निचला सिरा अचानक पतला हो जाता है। टहनियों के अन्दर काठ सड़ाने वाली फफूँद होने के कारण यह अनियमितता हो सकती है।

प्रबंधन

- पेड़ों में उचित सूक्ष्म एवं पोषकीय तत्वों को डालना चाहिए।
- पेड़ों की शाखाओं एवं टहनियों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए।

परजीवी

(क) बाँदा

आम के पौधे पर वैसे तो अनेक परजीवी पाये जाते हैं लेकिन उनमें महत्वपूर्ण फूल वाले परजीवी एवं अधिपादप होते हैं। आमतौर पर आम के जिन बागों/पेड़ों की भली-भाँति देखभाल नहीं होती है उन पेड़ों को प्रायः इस प्रकार के परजीवी प्रभावित करते हैं तथा पेड़ों के तनों एवं शाखाओं पर विकसित होते हैं। पश्चिम बंगाल के मालदा, केरल के त्रिचूर तथा महाराष्ट्र के बेंगुरला जिलों में एक-एक पेड़ पर 100 से अधिक प्रकार के फूल वाले परजीवी पौधे देखे गये जो पेड़ों को कमजोर कर देते हैं। उत्तरी भारत में ऐसे परजीवियों से 50-60 प्रतिशत तक आम के पेड़ प्रभावित पाये गये हैं। फूल वाले परजीवी पौधे पहाड़ों एवं मैदानों में पाये जाते हैं, जबकि अधिकांश अधिपादप (बरगद प्रजाति को छोड़ कर) पहाड़ों के नीचे भागों के ठंडे स्थानों पर तथा मैदानी क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

लोरेन्थेसी कुल में अनेक प्रकार के पौधे पाये जाते हैं जो आम के पेड़ों को प्रभावित करते हैं। लोरेन्थेसी कुल का एक सदस्य *डेन्ड्रोफ्थोइ फलकेटा* आम के पेड़ों पर अधिकतर पाया जाता है तथा अधिक नुकसान पहुँचाता है। यह भारत के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है।

प्रभावित पेड़ों की पत्तियाँ छोटे आकार की होती हैं तथा इस प्रकार के पेड़ों में फलन कम होने के साथ-साथ गुणवत्ता भी घट जाती है। चूँकि परजीवी पौधे आम के पेड़ों से पूर्णतया भिन्न होते हैं अतः इन्हें पेड़ पर आसानी से पहचाना जा सकता है। मेजबान आम के पेड़ों में परजीवी के घुसने वाले स्थानों पर आसाधारण वृद्धि हो जाती है तथा उभार बन जाता है जिन्हें बर्र के नाम से

जाना जाता है। मेजबान पेड़ों पर उभरा हुआ बर्र का स्थान ही परजीवी के घुसने को दर्शाता है। परजीवी में पीले रंग का सुन्दर फूल निकलता है। यह एक महत्वपूर्ण लक्षण है। अतः इस प्रकार परजीवी पौधों को नियंत्रित किया जा सकता है।

लोरेन्थेसी कुल के फल सरस होते हैं तथा फल का मध्य भाग चिपचिपा पाया जाता है जो विभिन्न माध्यमों जैसे पक्षी, गिलहरी तथा फलों के स्वस्फुटन से एक स्थान से दूसरे स्थान में आसानी से फैल जाता है। अंकुरण के पश्चात इनके बीज, चूषक उत्पन्न करते हैं जो पेड़ के तने आदि को प्रभावित कर उसमें घुस कर परजीवी को विकसित करते हैं तथा वह स्थान फूल कर ट्यूमर बन जाता है।

प्रबंधन

बाग का नियमित रूप से निरीक्षण करना चाहिए तथा जिन टहनियों में बाँदा का प्रकोप देखा जाये उन्हें शीघ्र काट कर जला देना चाहिए तथा पेड़ के कटे हुए भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए।

(ख) अमरबेल/आकाश बेल

जमीन पर पुष्पीय परजीवी पौधे एक नन्हे पौधे की भाँति उगते हैं तथा बाद में लताओं की तरह बढ़ कर पेड़ों के ऊपर छा जाते हैं। यह आंशिक तना परजीवी होता है और इसे अमरबेल के नाम से जाना जाता है। पेड़ों पर छाने के पश्चात लताओं से चूषक निकल कर टहनियों की छाल में प्रवेश कर जाते हैं तथा जमीन से संपर्क होने के पश्चात इनका विकास तेजी से होता है। यह परजीवी, पत्ती विहीन होते हैं तथा इसमें बहुत कम क्लोरोफिल मिलता है। इसकी रस्सी जैसी पीले भूरे रंग की शाखाएँ बढ़ कर पेड़ के ऊपर फैल जाती हैं। परजीवी के चूषकांगों जहाँ टहनियों में प्रवेश करते हैं वहाँ गाल का विकास होता है। परजीवी पौधे चूषकांगों के द्वारा मेजबान पेड़ों से पानी तथा पोषकीय तत्व शोषित करते हैं जिसके कारण पेड़ कमजोर हो जाते हैं। इससे फलों की उपज, फलों का आकार एवं गुणवत्ता प्रमुख रूप से प्रभावित होती है।

प्रबंधन

- बहुवर्षीय होने के कारण अमरबेल का नियंत्रण करना बहुत कठिन होता है। परजीवी पौधों की उपस्थित हेतु नियमित रूप से पेड़ों का निरीक्षण

करना चाहिए तथा प्रभावी टहनियों को काट कर शीघ्र निकाल देने के पश्चात कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का पेस्ट लगाना चाहिए।

- पेड़ों के नीचे खेती करने से, पूर्व में उगे हुए परजीवी के नवोद्भिद पौधे नष्ट हो जाते हैं।
- बाग के किनारे लगी हुई बाड़ के पौधों में परजीवी नहीं उगने देना चाहिए।

अधिपादप

अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में असंख्य अधिपादप, पुष्पीय पौधे, आर्किड, फर्न, काई तथा अनेक प्रकार के बरगद की प्रजातियों के पौधे बीजू तथा कलमी आम के पेड़ों के तनों एवं शाखाओं पर पाये जाते हैं। बरगद के पौधे प्रायः उपेक्षित तथा बहुत पुराने आम के पेड़ों तक ही सीमित हैं जो आमतौर पर दक्षिणी भारत में देखे गये हैं। बरगद की प्रजातियों में से कुछ प्रजातियाँ अधिक संख्या में मिलती हैं तथा अधिक विनाशकारी होती हैं। ये प्रजातियाँ हैं- जैसे *फाइकस पैरासिटिका, फा. लैकॅर, फा. रम्फाई, फा. बंगालेन्सिस तथा फा. रिलीजिओसा*। प्रारम्भ में इनकी बढ़ोत्तरी के लिए केवल सहारा हेतु मेजवान पेड़ों की आवश्यकता होती हैं। इनकी वृद्धि हेतु कार्बनिक पदार्थों तथा मिट्टी की आवश्यकता होती है, जो मेजबान पेड़ों की दरारों, गढ्ढों तथा द्विशाखीय स्थानों पर आसानी से उपलब्ध हो जाती है। पक्षियों को बरगद के फल बहुत प्रिय होते हैं तथा उनके आवागमन के दौरान विष्टा द्वारा बीज मेजवान पेड़ों तक आसानी से पहुँच जाता है जो उन्हीं पेड़ों पर अंकुरित होता है। बाद में नवोद्भिद पौधों से हवाई जड़ें निकल कर जाल सा बना देती हैं तथा पेड़ों के तने को घेर लेती हैं। बाह्य आवरण दबाव से मेजबान पेड़ मर जाते हैं।

प्रबंधन

- हवाई जड़ों के जमीन में घुसने तथा मेजबान (पोषक) पेड़ों के तनों को घेरने से पूर्व ही प्रारम्भिक अवस्थाओं में परजीवी एवं अधिपादपी पौधों को हटा देना चाहिए।

आम में भुनगा एवं गुजिया कीट प्रबंधन

आर.पी. शुक्ल[1]
केन्द्रीय उपोषण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भुनगा कीट

आम का भुनगा (फुदका या लस्सी) एक गंभीर तथा सर्वाधिक हानिकारक कीट है जिससे आम की फसल को 50 प्रतिशत तक हानि पहुँच सकती है। इस कीट का प्रभाव फरवरी के अंतिम सप्ताह से मार्च के पहले सप्ताह के बीच दिखना शुरू हो जाता है। *अमरीटोड्स एटकिनसोनाई, इडियोस्कोपस क्लाइपेएलिस* तथा *इडियोस्कोपस निटीड्यूलस* भुनगा कीट की प्रमुख प्रजातियाँ हैं जिन्हें उनके रंग, आकार तथा पेट पर विद्यमान धब्बों से आसानी से पहचाना

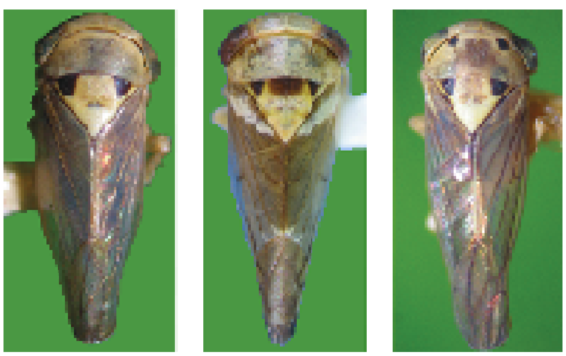

जा सकता है। *ए. एटकिनसोनाई* सबसे बड़े आकार का 4.2 से 5 मि. मी. लम्बा तथा गहरे भूरे रंग का होता है। इसके पेट तथा वरूथिका पर दो धब्बे होते हैं। *आई. निटीड्यूलस* आकार में थोड़ा छोटा 4-4.8 मि.मी. लम्बा होता है। इसके वरूथिका में तीन धब्बे होते हैं। इसके हल्के भूरे पंखों के चारों तरफ एक प्रमुख पट्टी होती है। *आई. क्लाइपेएलिस* आकार में सबसे छोटा (3.5 मि.मी.) एवं हल्के भूरे रंग का होता है जिसके वरूथिका पर दो तथा शीर्ष पर अनेक काले धब्बे होते हैं। वयस्क भुनगा फरवरी के अंत से मार्च तक फूल के ऊतकों पर अण्डे देते हैं। ये फल की प्रशाखाओं, कलियों तथा मुलायम पत्तियों पर एक-एक कर अण्डा देते हैं। भुनगे के शिशु एक सप्ताह में बाहर आ जाते हैं। बाहर आने के बाद शिशु एवं वयस्क कीट पुष्पगुच्छ, पुष्पक्रम, पत्तियों तथा फलों को भेद कर उनके मुलायम हिस्सों से रस को चूस लेते हैं। इससे पेड़ की तंदुरुस्ती का ह्रास होता है जिससे विशेषकर पुष्पक्रम नष्ट होता है तथा फल गिरते हैं। भारी मात्रा में भेदन तथा सतत रस चूसने के कारण छल्ला बनता है तथा प्रभावित ऊतक सूख जाते हैं। यह एक मीठा चिपचिपा पदार्थ उत्सर्जित करता है जो सूटी मोल्ड बनाने में सहायक होता है। सूटी मोल्ड एक प्रकार का फफूँद होता है जो पत्तों में होने वाली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करता है। भुनगा कीट पूरे वर्ष देखा जाता है किन्तु फरवरी से अप्रैल तथा जून से अगस्त के बीच इसका असर बढ़ जाता है। छाया एवं अधिक नमी इसकी गुणन में सहायक होता है। ऐसी स्थिति

[1]प्रभागाध्यक्ष (फसल सुरक्षा)

पास-पास लगाये गये, पुराने तथा उपेक्षित वृक्षों में होता है। गर्मी में भुनगा का जीवन-काल 2-3 सप्ताह का होता है।

प्रबंधन

आम के भुनगा के नियंत्रण के लिए प्रथम छिड़काव इमिडाक्लोप्रिड (0.005%, 0.3 मि.ली./ ली. पानी) का पुष्पगुच्छ तैयार होने की प्रारम्भिक अवस्था में करना चाहिए। दूसरा छिड़काव थायोमेथोक्जाम (0.005%, 0.2 ग्रा./ली. पानी) या एसिफेट (1.5 ग्रा./ली पानी) का फल बैठने के बाद करें। तीसरा छिड़काव यदि आम के भुनगे की संख्या अभी भी अधिक मात्रा में हो तो कार्बारिल (0.15%, 3 ग्रा. /ली. पानी) का फल की परिपक्वता से पूर्व करना चाहिए। सिंथेटिक पाइरेथ्राइड्स साइपरमेथ्रिन, परमेथ्रिन, फेनवेलरेट तथा डेल्टामेथ्रिन का आम के वृक्षों में छिड़काव नहीं करें।

यदि 50 प्रतिशत से अधिक पुष्पन हो गया है तब बागवानों को छिड़काव नहीं करने की सलाह दी जाती है क्योंकि इससे पराग क्रिया पर असर होता है जिससे कम फल बैठते हैं। आम में भुनगा के प्रभाव को कम करने के लिए बागों को साफ रखें, घास पत्तियों की निराई करें तथा घने एवं एक दूसरे पर फैली शाखाओं की दिसंबर महीने में कटाई कर दें।

गुजिया कीट

आम में गुजिया कीट *(ड्रोसिका मैन्जीफेरी)* पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा दिल्ली राज्यों में उत्पादित होने वाले आम को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कीट है। इस कीट का एक ही जीवन चक्र होता है। ये कीट पेड़ के तने के पास मिट्टी में अण्डे देते हैं। विभिन्न राज्यों की मिट्टी में व्याप्त विविधता के कारण गुजिया कीट के अण्डे दिसम्बर से

जनवरी में निकलने लगते हैं। यह प्रक्रिया सामान्यता तब प्रारम्भ होती है जब मिट्टी का तापमान 16 से 18 डिग्री से.ग्रे. होता है। कीट के निम्फ (बच्चे) अण्डों से निकलने के तुरन्त बाद पेड़ के तने पर चढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। सबसे पहले निम्फ (बच्चे) जनवरी से मार्च के तृतीय सप्ताह तक देखे जा सकते हैं। तीसरी प्रकार के नर एवं मादा कीट मार्च से अप्रैल के मध्य तक देखे जा सकते हैं। गर्भवती मादा कीट अप्रैल के तीसरे सप्ताह से मई तक स्थान बदलती हैं। सामान्यता मादा मुख्य शाखाओं से होकर ही स्थान परिवर्तित करती हैं किन्तु कुछ सीधे प्रभावित पुष्पगुच्छ से भूमि पर गिर जाती हैं। अण्डा देने के पश्चात नये निकले हुए गुलाबी से भूरे रंग के कीट शिशु पेड़ पर चढ़ जाते हैं। गुजिया के निम्फ (बच्चे) तथा वयस्क मादा पुष्प समूह कमजोर पत्तों एवं प्रशाखाओं के रस को चूस लेते हैं। अत्यधिक रस चूसे जाने के कारण प्रभावित भाग मुरझा कर अन्त में सूख जाता है तथा फल लगने को भी प्रभावित करता है। कीट द्वारा चिपचिपा द्रव्य विसर्जित किये जाने के कारण सूटी मोल्ड विकसित होता है तथा पत्ते एवं पुष्प समूह चिपचिपे तथा काले चमकीले हो जाते हैं।

प्रबंधन

आम में गुजिया कीट के प्रबंधन के लिये पॉलीथीन की पट्टी (400 गेज, 30 से. मी. चौड़ाई वाली) को पेड़ के तने के चारों ओर भूमि की सतह से 30 से. मी. की ऊँचाई पर लपेटना तथा दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में उसके निचले किनारे पर ग्रीस का लेप लगाना चाहिए। इसके बाद क्लोरपाइरीफास चूर्ण का 1.5 प्रतिशत 250 ग्रा. प्रति वृक्ष की दर से पेड़ के तने के जड़ में डालना चाहिये। यदि यह दिसम्बर में नहीं किया गया है तो जनवरी में अवश्य करना चाहिए।

यदि निम्फों (बच्चों) ने पेड़ पर चढ़ना प्रारम्भ कर दिया है तो ऐसी अवस्था में कार्बोसल्फान (0.05%, 25 ई. सी./2 मि. ली./लीटर पानी) या डायमेयोएट (0.06%, 30 ई. सी./2 मि.ली./लीटर पानी) का जनवरी से मार्च में छिड़काव करना चाहिए। नवम्बर महीने में बाग के खरपतवार एवं अन्य घासों की जुताई करने से सुप्रावस्था में रहने वाले अण्डे धूप में निकल आते हैं जिन्हें गर्मी एवं चीटियाँ नष्ट कर देती हैं। बायो नियंत्रण एजेंट *बेवेरिया बैसियाना* का इस्तेमाल करने से भी कीटों की संख्या को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

बागवानी फसलों में नर्सरी का महत्व

अजय कुमार त्रिवेदी[1] एवं दीपा बिष्ट[2]
राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, भुवाली, नैनीताल

नर्सरी ऐसी जगह है जहाँ किसी भी प्रजाति के पौधों को अनुकूल वातावरण में उगाया जाता है जिससे वे अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था को सफलतापूर्वक बिता सकें। उसके बाद इन पौधों को कृषि भूमि में स्थानान्तरित किया जाता है। बीजों को रोपण से पहले क्यारियों में उगाया जाता है। उसके बाद उनसे तैयार पौधों को क्यारियों अथवा कृषि भूमि में स्थानान्तरित किया जाता है।

एक आदर्श नर्सरी तैयार करने के लिए निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण होते हैं।

मृदीय कारक : मृदा पृथ्वी की खण्डित या असंपीडित बाह्य परत है जिसमें बहुत से कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ तथा जल एवं वायु होती है। मृदा में लगभग 40 प्रतिशत, खनिज पदार्थ 10 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ, 25 प्रतिशत जल तथा 25 प्रतिशत वायु होता है।

मृदा के सभी कण आकार एवं आकृति में एक समान नहीं होते हैं। उनके आकार एवं व्यास पर आधारित मिट्टी तीन प्रकार की होती है- बुलुई, चिकनी तथा दोमट मृदा। बलुई मृदा ढीली होती है क्योंकि इसके कणों के बीच अधिक स्थान रहता है। इसमें पौधों की जड़ें आसानी से फैलती हैं। यह जल जल्दी सोखती भी हैं और इसके अन्दर जल का वहन तेजी से होता है। परन्तु इसमें जल को अपने अन्दर रखने की क्षमता कम होती है तथा पोषक पदार्थ कम होने के कारण यह कम उपजाऊ होती है। इसलिए फलदार वृक्षों की नर्सरी बनाते समय इसका उपयोग कम किया जाता है क्योंकि इस मिट्टी में पौधों की जड़ों को बाँधने की क्षमता नहीं होती है एवं यह मृदा पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं है। चिकनी मिट्टी में कण एक दूसरे के निकट होने के कारण ठोस होते हैं। इसमें जड़ें कठिनाई से प्रवेश करती हैं। इसमें वायु कम होती है तथा कार्बन डायऑक्साइड की मात्रा अधिक होती है। ऑक्सीजन के अभाव में जड़ें श्वसन प्रक्रिया नहीं कर पातीं और मरने लगती हैं। यह मिट्टी जल के वाष्पित हो जाने के बाद संकुचित होकर फट जाती है। अतः यह मृदा भी पौधों के लिए उपयुक्त नहीं होती है। पौधों में वृद्धि के लिए दोमट मृदा सबसे अच्छी होती है। जिसमें रेत एवं चिकनी मिट्टी के कणों का मिश्रण होता है। इसका कारण यह है कि इसमें वायु की मात्रा अधिक होती है और जल का वहन आसानी से होता है। इसमें जड़ें आसानी से प्रवेश कर सकती हैं और जल को अपने अन्दर रखने की क्षमता अधिक होती है। अतः फलदार वृक्ष जैसे सेब, नाशपती, आड़ू, अलूचा आदि की नर्सरी बनाते समय दोमट मिट्टी का ही उपयोग किया जाता है। इसके अलावा

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं [2]वरिष्ठ शोधकर्ता

पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए अकार्बनिक लवणों की आवश्यकता होती है। पौधे जड़ों द्वारा भूमि से इन्हें अवशोषित करते हैं। पौधों की समुचित वृद्धि के लिए इन पदार्थों का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है। इन लवणों की कमी से पौधों के विकास में अनेक प्रकार की अनियमिताएँ पायी जाती हैं।

सिंचाई : सभी जीवधारियों के लिए जल आवश्यक होता है। पौधे अपना सम्पूर्ण जल मृदा से लेते हैं। विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अलग-अलग अवस्था में जल की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। सामान्यतः संतृप्त मृदा में जल लगभग 25 प्रतिशत होता है। परन्तु पौधों की उपयुक्त वृद्धि के लिए समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सभी फल वृक्षों की नर्सरी में बीजों के अंकुरण के लिए जल आवश्यक होता है। जैसे ही कोई बीज जल शोषित करता है तो इसके भोज्य पदार्थ घुलित अवस्था में आ जाते हैं और इनमें विकर सक्रिय हो जाता है तथा अंकुरण प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाता है। अतः नर्सरी में नियमित अंतराल में सिंचाई करते रहना चाहिए। नर्सरी को उस क्षेत्र में बनाना चाहिए जहाँ पानी की पर्याप्त सुविधा हो।

प्रतिरोपण : रोपण क्यारियों से पौधों को अन्य क्षेत्र में स्थानान्तरित करना सुगम होना चाहिए। अतः नर्सरी उस क्षेत्र के पास होनी चाहिए जहाँ पौधों को स्थानान्तरित करना है। नर्सरी में बीजों द्वारा बने नवोद्भिद पौधे अत्यन्त छोटे होते हैं। परन्तु रोपण क्यारियों में इन पौधों के बीच लगभग बराबर दूरी होती है। इससे इनकी वृद्धि अच्छी तथा जड़ें भी अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। उसके बाद इन पौधों को स्थानान्तरित किया जाता है। स्थानान्तरण सावधनीपूर्वक करना चाहिए जिससे की पौधों को किसी प्रकार की क्षति नहीं हो।

प्राकृतिक क्षेत्र : एक पौधे या उसके समुदाय के चारों ओर पाया जाने वाला वातावरण पौधे के जीवन पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। अतः किसी भी जाति के पौधों की नर्सरी उसके प्राकृतिक क्षेत्र के आसपास बनानी चाहिए ताकि पौधों को अनुकूल वातावरण प्राप्त हो सके। पौधों की वृद्धि स्थान की ऊँचाई, भूमि की ढलान, पर्वतों की दिशा आदि पर भी निर्भर करती है। स्थान की ऊँचाई अधिक होने पर वहाँ तापक्रम कम होता है इसलिए जितने भी बागवानी से सम्बन्धित वृक्ष होते हैं वह सभी वृक्ष अलग-अलग ऊँचाई पर भिन्न-भिन्न गुण दर्शाते हैं। इनकी पत्तियों के आकार एवं माप में अन्तर होता है, फूलों और फलों के लक्षण भी भिन्न होते हैं। साथ-ही-साथ वृक्षों के आकार तथा माप में भी अन्तर होता है। अलग-अलग ऊँचाई पर जलवायुवीय, मृदीय तथा स्थलाकृतिक कारक भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः फल वृक्षों जैसे खुबानी, आड़ू, अलूचा, नाशपती, सेब आदि की पौधशाला तैयार करते समय वहाँ के प्राकृतिक कारक भी पौधों को प्रभावित करते हैं।

रोपण क्यारियों का निर्माण : ज्यादातर बागवानी से सम्बन्धित पौधों को ग्राफ्टिंग, कटिंग, बडिंग तथा बीजों द्वारा तैयार किया जाता है। अतः नर्सरी से अच्छी किस्म के पौधे सुगमता से तैयार किये जा सकते हैं। बीजों को नर्सरी में उगाने से उनमें अंकुरण अच्छी तरह से होता है। बागवानी से सम्बन्धित पौधों को नर्सरी में तैयार करने से पौधों

की वृद्धि भी नियमित होती है तथा साथ-ही-साथ रोगों से बचाव करना आसान होता है। अधिकतर फल वृक्षों में वृद्धि बहुत धीरे-धीरे होती है। अतः पौधों को पौधशाला में तैयार करना आसान एवं कम खर्चीला होता है। सजावट के तौर पर जो पौधे उपयोग में लाये जाते हैं उनको भी नर्सरी में तैयार किया जाता है जिससे की उनमें वृद्धि एवं विकास तीव्र गति से हो।

नर्सरी में रोपण क्यारियों की माप पौधों की प्रजाति और स्थान के अनुसार अलग-अलग होती है। रोपण क्यारियों की चौड़ाई इतनी होनी चाहिए कि खरपतवार क्यारियों के दोनों ओर से सुगमता से निकाला जा सके। सामान्यतः क्यारियों की चौड़ाई 1.2 मीटर होती है परन्तु कभी-कभी यह 1.8 मीटर तक हो सकती है। नर्सरी में बीजों को उगाने की बहुत सारी विधियाँ हैं जैसे कुछ बीजों को क्यारियों में कहीं पर भी फैला दिया जाता है। परन्तु इससे बीजों के बीच में स्थान एक समान नहीं रहता जिससे उनका अंकुरण सफलतापूर्वक नहीं हो पाता। परन्तु कुछ नर्सरी में बीजों को पंक्तियों में बोया जाता है जिससे पौधों के बीच एवं पंक्तियों के बीच में दूरी एक समान होती है तथा उनकी वृद्धि तथा जड़ों के तीव्र विकास के लिए भी पर्याप्त स्थान मिल जाता है। कुछ क्यारियों में छोटे-छोटे छिद्र कर उनमें बीजों को डाला जाता है और उसके बाद मिट्टी से उन छिद्रों को ढक दिया जाता है।

नर्सरी बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- नर्सरी उस स्थान पर बनानी चाहिए जहाँ पर्याप्त मात्रा में पानी हो क्योंकि बीजों के अंकुरण एवं पौधों की वृद्धि के लिए सिंचाई बहुत महत्वपूर्ण है।
- मृदा का पी. एच. मान 6.5-7.0 के मध्य होना चाहिए। यह पौधों के विकास के लिए उपयुक्त मान है तथा मृदा कीटों, कवकों आदि रोगजनक जीवों से मुक्त होनी चाहिए क्योंकि ये रोगजनक जीव पौधों की विकास दर कम कर देते हैं तथा बीजों के अंकुरण को भी प्रभावित करते हैं।
- नर्सरी का निर्माण छायादार स्थान पर नहीं करना चाहिए क्योंकि छायादार स्थान पर पौधों को पर्याप्त रोशनी नहीं मिल पाती जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है।
- नर्सरी को पक्षियों तथा अन्य जानवरों से होने वाली हानि से बचाने के लिए नर्सरी के चारों ओर घेराबंदी करनी चाहिए।
- पौधों की वृद्धि के लिए गोबर की खाद एवं अच्छे उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए।

बीजों को बोने का समय, बीजों के परिपक्व होने तथा पौधों की वृद्धि दर उस स्थान की जलवायु पर निर्भर करती है। बीजों को कीटों आदि से बचाने के लिए मृदा में अच्छे कीटनाशी आदि का प्रयोग करना चाहिए तथा क्यारियों को कटीले झाड़ियों से ढक देना चाहिए ताकि पक्षियों से उनकी रक्षा हो सके। बीजों को नर्सरी में बोने के पश्चात् बीजों को खाद, मृदा एवं बालू के मिश्रण से ढक देना चाहिए तथा बाद में सूखी पत्तियों तथा धान के तिनकों से भी बीजों को ढक देना चाहिए। परन्तु जैसे ही बीजों में अंकुरण प्रारम्भ हो, सूखी पत्तियों और तिनकों को हटा देना चाहिए।

नर्सरी के लिए बीज सबसे महत्वपूर्ण कारक होता है। इन बीजों में ही सारी आनुवांशिक सूचनाएँ होती हैं जो पौधों की वातावरण में अनुकूलता, कीटों और रोगजनक जीवों से प्रतिरोध करने की क्षमता आदि निर्धारित करती हैं। इसलिए उत्तम किस्म के बीजों को ही नर्सरी में उगाना चाहिए। अधिकतर फल वृक्षों के बीजों को नर्सरी में लगाने के एक महीने पश्चात अंकुरण शुरू हो जाता है। अंकुरण की क्रिया लगभग छः महीनों तक चलती है। अंकुरण की क्षमता पौधों की प्रजाति पर भी निर्भर करती है। नर्सरी में बोये जाने वाले बीजों में से 80 प्रतिशत में अंकुरण की क्षमता होती है जबकि अन्य कृषि भूमि में बोये गये बीजों में अंकुरण लगभग 65 प्रतिशत तक होता है। नर्सरी में पोधौं को अनुकूल वातावरण में रखा जाता है जिससे उनकी अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।

बीजों का चुनाव सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योंकि पौधों के सारे गुण बीजों पर ही निर्भर करते हैं। उत्तम गुणवत्ता के बीजों को बोने से फल भी उत्तम गुणवत्ता वाले मिलते हैं। उन बीजों का चुनाव करना चाहिए जिनमें अंकुरण तीन महीनों तक हो जाता है। नवोद्भिद पौधों की नर्सरी तैयार करते समय ऐसे पौधों को लेना चाहिए जिसमें कम-से-कम छः पत्तियाँ हो तथा नर्सरी में पौधों को लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह किसी रोगजनक जीवों से प्रभावित नहीं होते हों। बागवानी से सम्बन्धित फसलों को बोने का समय जून से सितम्बर माह तक होता है। जहाँ खेतों में पानी की पर्याप्त मात्रा हो वहाँ बीजों को मानसून आने के बाद बोना चाहिए। नर्सरी में पौधों एवं बीजों के लिए पोषक तत्वों का स्रोत एफवाईएम, खाद, उर्वरक आदि हैं। खाद में पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व मिले हुए होते हैं। इसे मृदा के साथ ठीक तरह से मिलाने से पौधों की जड़ों को पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

फल वृक्षों के प्रजनन के लिए बीजों के अतिरिक्त अन्य विधियाँ जैसे कर्तन विधि, ग्राफ्टिंग या टंग विधि, बडिंग आदि हैं। इन विधियों से अच्छे किस्म के पौधों को तैयार किया जा सकता है।

कर्तन विधि : इस विधि से नर्सरी तैयार करने के लिए सर्वप्रथम नर्सरी बेडों को समतल कर लिया जाता है। नर्सरी की चौड़ाई लगभग 1.5 मीटर और लम्बाई सामान्यतः आवश्यकतानुसार रख सकते हैं। कम-से-कम पाँच कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर गोबर की छनी हुई खाद मिट्टी में मिला लेनी चाहिए। बेड के चारों ओर पानी रोकने के लिए मेढ़ का बनाना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार बैड तैयार हो जाते हैं। जब पौधा सुषुप्तावस्था में होता है तब पौधों की पत्तियाँ गिर जाती हैं। उस समय पेंसिल या उससे थोड़ी अधिक मोटी आकार की कटिंग लेनी चाहिए। प्रत्येक कटिंग की लम्बाई लगभग 15-20 से.मी. एवं प्रत्येक कटिंग पर कम-से-कम 2-3 कलिकायें होनी चाहिये।

ग्राफ्टिंग या टंग विधि : कलम विधि से पौध तैयार करने के लिए बीजू पौधे की आवश्यकता होती है जिन्हें रूट स्टॉक कहते हैं। इन पर मूल प्रजाति की कलम को बाँधा जाता है। बीजू पौधे तैयार करने के लिए पहले नर्सरी में बैड तैयार कर लेते हैं। उसके बाद जब रूट स्टॉक तैयार हो जाए तो उस पर कलम बाँधनी चाहिए। जिस प्रजाति के पौधे तैयार करने होते हैं उस प्रजाति के पौधे से कटिंग लेकर

बीजू पौधों के मूलवृन्त पर कलम को आपस में सटाकर पालीथीन के टुकड़ों से सावधानीपूर्वक बाँध देते हैं। इसे टंग (जीभ) या स्लाईस विधि कहते हैं। लगभग एक से डेढ़ महीने के भीतर शाखाओं में पत्तियाँ दिखायी देने लगती हैं। यह पत्तियाँ मूलवृन्त पर भी दिखायी देती हैं जिन्हें समय-समय पर तोड़ते रहना चाहिये। इस विधि द्वारा कर्तन विधि से अधिक सफलता मिलती है। इस प्रकार कलम विधि के द्वारा किसान आसानी से पौधे तैयार कर इसे मुख्य प्रक्षेत्र पर रोपकर लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यह विधि अनेक फल वृक्षों जैसे कीवी, आड़ू, नाशपती, नींबू आदि में बहुत सफल होती है।

बडिंग : इस विधि द्वारा मूलवृन्त पर T आकार का कट लगाया जाता है। जिस प्रजाति के पौधे तैयार करने हों उस प्रजाति की टहनी से एक कलिका (बड), जिसे साधारण भाषा में आँख कहा जाता है, निकाल कर उसे मूलवृन्त में बनाये गये T के आकार के कट को चौड़ा करते हुए उसके अन्दर फँसा कर बड के दोनों सिरों को पॉलीथीन से बाँध देते हैं तथा बीजू पौधे को बाधें गये बड से छः इंच ऊपर से काट देते हैं।

पौधों की वृद्धि तथा बीजों के अंकुरण के साथ ही नर्सरी या खेत में खरपतवार भी बहुत अधिक मात्रा में उगते हैं। अतः इनको नियंत्रित करते रहना आवश्यक होता है क्योंकि ये मृदा से जरूरी पोषक तत्वों को ले लेते हैं जिसका प्रभाव बीजों के अंकुरण तथा पौधों की वृद्धि पर होता है। अतः इन खरपतवारों से बचने के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए। इन खरपतवारों को शुरूआती दिनों में ही निकाल देना चाहिए क्योंकि तब इनमें जड़ें पूरी तरह से विकसित नहीं होती हैं और ये आसानी से हाथों के द्वारा ही निकाल लिये जाते हैं। इन खरपतवारों से पौधों को बचाने के लिए उचित खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिये।

पौधों को अत्यधिक गर्मी, पाला, हवा, बारिश आदि से बचाने के लिए पॉलीथीन, टीन अथवा लकड़ी आदि का उपयोग करना चाहिये। नर्सरी की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

- अस्थायी नर्सरी बनाते समय चारों ओर से तारों की घेराबंदी करनी चाहिये।
- स्थायी नर्सरी बनाते समय पत्थरों अथवा लकड़ी की दीवारों से घेराबंदी करनी चाहिये।
- रोपण क्यारियों को पक्षियों से होने वाली हानि से बचाने के लिए सूखे कटीले झाड़ियों को क्यारियों के ऊपर रखना चाहिये।
- शुष्क क्षेत्रों में गर्म और धूल भरी हवाओं से नर्सरी को बचाने के लिए चारों ओर छोटे-छोटे पेड़ लगाने चाहिये।

पौधों की उपयुक्त वृद्धि के लिए सिंचाई अति आवश्यक है परन्तु सिंचाई नियंत्रित तथा नियमित होनी चाहिये क्योंकि अधिक पानी डालने से कई बार छोटे-छोटे बीज मिट्टी के ऊपर आ जाते हैं इसके साथ-ही-साथ खरपतवारों का प्रकोप भी अधिक हो जाता है। पत्तियों में पीलापन आ जाता है तथा अन्त में पौधों की मृत्यु हो जाती है। पौधों में सिंचाई के लिए सबसे उपयुक्त समय सुबह का होता है। नर्सरी में सिंचाई कार्य करने के कई साधन हैं जैसे नर्सरी में छिद्रित टोंटी लगी हुई बाल्टी से भी सिंचाई कर

सकते हैं। इसके अलावा पाइपों के द्वारा भी सिंचाई कर सकते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रजाति के पौध नर्सरी में अलग-अलग समय तक रखे जाते हैं। पौधों को नर्सरी में तब तक रखा जाता है जब तक कि उनमें जड़ें पूरी तरह विकसित नहीं हो जातीं उसके बाद उन्हें अन्य क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया जाता है।

नर्सरी में उगाई जाने वाली कुछ बागवानी फसलें

कीवी : कीवी के पौघों को नर्सरी में तैयार किया जाता है। कीवी में प्रजनन क्रिया मुख्यतः बीजों द्वारा, ग्राफ्टिंग, कर्तन विधि एवं बडिंग द्वारा किया जाता है। कीवी की नर्सरी तैयार करने के लिए सर्वप्रथम लगभग पाँच कि.ग्रा. गोबर की छनी हुई खाद को मिट्टी में मिलाया जाता है। कीवी के लिए दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। इसमें वायु की मात्रा अधिक होती है तथा जल को अपने अन्दर रखने की क्षमता भी अधिक होती है। मृदा में नमी को बनाये रखने के लिए बॉज के पत्तों को भी मृदा में मिलाया जाता है। ग्राफ्टिंग का कार्य मुख्यतः दिसम्बर-जनवरी महीने में होता है क्योंकि तब तक पौधे सुषुप्तावस्था में होते हैं। ऐसी अवस्था में पौधों की पत्तियाँ गिर जाती हैं तथा कटिंग भी आसानी से प्राप्त हो जाती है। कीवी की एक साल पुरानी शाखाओं से कलम काटकर इसे 1000 पी.पी.एम. आई.बी.ए. (इन्डोल ब्यूटाइरिक एसिड) से उपचारित कर जनवरी माह में क्यारी में लगाया जाता है। कीवी का रोपण करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इसमें नर एवं मादा पौधे अलग-अलग हों। अच्छे परागण के लिए पाँच मादा पौधों के साथ एक नर पौधे का रोपण किया जाता है। कीवी के पौधों में प्रारम्भ में 2-3 वर्षों तक 30 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा 0.5 कि. ग्रा. एन.पी. के. मिश्रण (120:60:60) प्रति पौधा देना चाहिये तथा समय-समय पर सिंचाई भी करते रहना चाहिये। इस तरह नर्सरी से प्राप्त कीवी के पौधे उत्तम किस्म के होते हैं।

अमरूद : अमरूद की नर्सरी बनाते समय पौधों को बडिंग द्वारा तैयार किया जाता है। मुख्यतः अमरूद के पौधों को 20×10/10×25 से.मी. वाले पॉलीथीन बैग में उगाया जाता है। इसके लिए रूट स्टॉक को एक साल पहले तैयार कर लिया जाता है। अच्छे किस्म के पौधे तैयार करने के लिए मृदा में एफ.वाई. एम. मिलाया जाता है जिससे कि पौधे मृदा से पोषक तत्व आसानी से अवशोषित कर सकें। बडिंग के लिए तने की मोटाई 3.5-4.5 से.मी. होनी चाहिये तथा पौधे की ऊँचाई 40-60 से.मी. तक होनी चाहिये। अच्छी उत्पादकता के लिए नियमित अंतराल से सिंचाई भी आवश्यक है।

काकू : काकू की नर्सरी के लिए दोमट उपजाऊ मिट्टी जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो उपयुक्त होती है। इसके पौधों की नर्सरी तैयार करने के लिए जनवरी-फरवरी के महीनों में पौधों को 4×4 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिये। पौधों के रोपण हेतु 1×1 मीटर के गड्ढे 20-25 दिन पहले खोद लेते हैं तथा 35-40 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद तथा 30-40 ग्रा. कीटनाशक मिट्टी में मिलाकर गढ्ढे को भर देते हैं जिससे कि पौधों की जड़ों को कीटों से बचाया जा सके। इसके पौधों का प्रसारण मुख्यतः रोपण विधि द्वारा होता है। इसके

लिए मूलवृन्त पर अच्छी प्रजाति की कलम लेकर अच्छे किस्म के पौधे तैयार किये जा सकते हैं। पौधों की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए एक वर्ष की आयु वाले पौधों को 10-12 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 50 ग्रा. नाइट्रोजन, 25-30 ग्रा. फास्फोरस एवं 50-60 ग्रा. पोटाश देते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की सिंचाई करते रहना चाहिये जिससे पौधों की वृद्धि नियमित हो। काकू के पौधों को विशेष कटाई-छँटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। शुरु में पौधे लगाने के बाद 70-75 मीटर की ऊँचाई पर काट देना चाहिये। काट-छाँट की प्रक्रिया सुसुप्तावस्था यानि दिसम्बर-जनवरी में की जानी चाहिये।

नाशपाती : नाशपाती की बागवानी प्रायः सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जा सकती है। परन्तु इसकी अच्छी पैदावार के लिए लगभग 6.0-7.5 पी.एच.मान वाली गहरी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। नाशपाती की नर्सरी मुख्यतः कलमी पौधे के द्वारा तैयार की जाती है। कलमी पौधे तैयार करने के लिए मेहल कहे जाने वाले जंगली नाशपाती के बीजू पौधे बनाये जाते हैं। मेहल का बीज अक्टूबर-नवम्बर में निकालकर दिसम्बर में बोया जाता है। एक वर्ष के पौधे कलम बाँधने के लिए उपयुक्त होते हैं। फरवरी-मार्च में स्लाईस विधि द्वारा वांछित किस्म की कलम को बाँधा जाता है। नर्सरी से बिना बीजू पौधे उखाड़े ही उन पर वांछित प्रजाति की कलम बाँधने से अधिक सफलता मिलती है।

नाशपाती की नर्सरी तैयार करते समय कतार-से-कतार तथा पौधे-से-पौधे के बीच 7-8 मीटर की दूरी पर 125×125 से.मी. गहराई और व्यास के गड्ढों की सितम्बर माह तक खुदाई कर लेनी चाहिये तथा उसमें 100 ग्रा. बेवेस्टीन तथा 100 ग्रा. कीटनाशक दवा के साथ 80 से 100 कि.ग्रा. गोबर या कम्पोस्ट खाद मिलाकर गड्ढे को अच्छी प्रकार भर देना चाहिये जिससे कि हानिकारक कीट और फफूंद के बीजाणु जड़ों को नुकसान न पहुँचा सकें। उसके पश्चात् अच्छी प्रजाति के पौधों को इन गड्ढों के मध्य में रोपण करना चाहिये। पौधा रोपण के बाद हल्की सिंचाई करते रहना चाहिये।

पपीताः पपीता को मुख्यतः बीजों के द्वारा उगाया जाता है। इसके बीज 45 दिनों के बाद अपनी अंकुरण क्षमता खो देते हैं। अतः इनके बीजों को 45 दिनों के अन्दर नर्सरी में उगाया जाता है। पपीता के बीजों को मुख्यतः अगस्त से सितम्बर के मध्य 1-2 से.मी. गहराई में बोया जाता है। इसके पौधों के बीच में 10-15 से.मी. का स्थान खाली रखा जाता है। रोगों से बीजों के बचाव के लिए कैप्टान (3 ग्रा./कि.ग्रा.) प्रयोग किया जाता है तथा नियमित अन्तराल से सिंचाई की जाती है। खरपतवारों को समय-समय पर निकाल दिया जाता है क्योंकि ये मृदा से जरूरी पोषक तत्वों को ग्रहण कर लेते हैं। इसी प्रकार बागवानी से सम्बन्धित अन्य पौधों की नर्सरी भी तैयार की जाती है।

नर्सरी में होने वाले रोग एवं उनका निदान

नर्सरी में पौधों में होने वाला मुख्य रोग है- डेंम्पिंग ऑफ जो मुख्यतः कवकों से होने वाला रोग है। यह फाइटोफ्थोरा, पीथियम, राइजोक्टोनिया एवं फ्यूजेरियम से होता है। ये पौधो की जड़ों को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा नाइट्रोजन की

कमी से पत्तियों में पीलापन आ जाता है तथा हरे पीले धब्बे पड़ जाते हैं। फास्फोरस, मैग्नीशियम, जिंक आदि की कमी से भी पौधों में अनेक प्रकार की अनियमितताएँ आ जाती हैं। कुछ पत्तियाँ मुरझा जाती हैं तथा कुछ पत्तियाँ मोटी हो जाती हैं। कुछ रोगजनक जीवों के जीवाणु मृदा में पाये जाते हैं और यह अनुकूल परिस्थिति में मृदा से उत्पन्न होते हैं जो पौधों की वृद्धि को अवरुद्ध करते हैं। अतः इन रोगों का निदान भी अति आवश्यक है। इसके लिए नर्सरी में प्रयुक्त होने वाली मृदा को अच्छी तरह सुखा कर प्रयोग करना चाहिये। मृदा थोड़ा अम्लीय होनी चाहिये। यदि मृदा क्षारीय या उदासीन हो तो उसमें सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फर, एल्युमिनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट आदि मिलाने चाहिए।

रासायनिक उपचारः नर्सरी में उपयुक्त रासायनों के छिड़काव से इन रोगों से बचा जा सकता है। नर्सरी में 5 लीटर फॉरमालिन विलयन (1:100, Formaline: water) प्रति वर्ग मीटर का उपयोग करना चाहिये। जिस नर्सरी में विलयन का छिड़काव किया जाये उसे 7-8 दिनों के लिए पॉलीथीन से ढक देना चाहिये तथा उसके बाद नर्सरी को 7-10 दिनों तक खुला रखना चाहिये। बीजों को बोने से पहले 2 ग्रा. प्रति लीटर बेविस्टीन से उपचारित करना चाहिये। बीजों की बुवाई करने से पहले सेविन पाउडर को 20-25 ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से मृदा में मिलाना चाहिये। नाइट्रोजन की कमी होने पर 1 प्रतिशत यूरिया प्रयोग करना चाहिये। फास्फोरस की कमी को पूरा करने के लिए पत्तियों पर 2 प्रतिशत डीएपी या 1 प्रतिशत सुपर फास्फेट का छिड़काव करना चाहिये।

जैविक उपचार : बीजों एवं मृदा दोनों के उपचार के लिए ट्राइकोडर्मा, *स्यूडोमोनास* तथा *बेसिलस* का उपयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य विधियों द्वारा भी नर्सरी में होने वाले रोगों से बचाव किया जा सकता है। इनमें मुख्यतः गर्म भाप के द्वारा मृदा को रोगजनक जीवों द्वारा मुक्त किया जा सकता है। इसके अलावा गर्म पानी से भी मृदा को उपचारित किया जा सकता है। जिससे मृदा में उपस्थित सभी रोगजनक जीवों की मृत्यु हो जाती है। मृदा को नर्सरी में उपयोग करने से पहले अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये। इन सभी विधियों का प्रयोग कर हम नर्सरी में होने वाले रोगों से बचाव कर सकते हैं।

इस प्रकार नर्सरी में अच्छी प्रजाति के पौधों को अनुकूल वातावरण देकर हम उत्पादक्ता को कई गुना बढ़ा सकते हैं। बागवानी के क्षेत्र में नर्सरी के अत्यधिक उपयोग से अच्छी प्रजाति के पौधे तैयार किये जा रहे हैं। जिससे किसानों की आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार देखा जा सकता है। साथ-ही-साथ फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में भी बढ़ोतरी हुई है।

औद्यानिक फसलों में मृदा उपयुक्तता एवं मृदा परीक्षण

कैलाश कुमार[1], तरुण अदक[2] एवं विनोद कुमार सिंह[3]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मृदा पृथ्वी के ऊपरी सतह का वह भाग है जो पौधों एवं अन्य जीवों को जीवन आधार प्रदान करता है। यह अकार्बनिक कणों, वायु, जल, सूक्ष्म जीवाणु और जैविक पदार्थों का एक मिश्रण है। मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुण मृदा के उपयोग तथा पौधों की वृद्धि के प्रति मृदा के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। मृदा विलयन में विभिन्न तत्व आयन्स के रूप में होते हैं। H^+ और OH^- आयन्स समतुल्य मात्रा में होने पर मृदा अभिक्रिया उदासीन होती है। मृदा के पी. एच. मान का पोषक तत्वों की उपलब्धता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मृदा में पोटैशियम, फास्फोरस, कैल्सियम और मैगनीशियम की प्राप्यता पौधों को बहुत कम हो जाती है जबकि क्षारीय मृदा में फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्सियम, लोहा, जस्ता आदि की उपलब्धता में अत्यंत कमी आ जाती है। नाइट्रोजन भी अधिक अम्लीय या अधिक क्षारीय मृदाओं में पौधों को प्राप्य नहीं हो पाती है। मृदा विलयन की अम्लीयता बढ़ने पर उसमें उपस्थित लोहा, एल्युमीनियम और मैगनीज आयन्स की क्रियाशीलता बढ़ जाती है जो फासफोरस के यौगिकों के साथ क्रिया कर उन्हें जटिल और अविलय यौगिकों के रूप में स्थिर कर देती हैं। यह स्थिरीकरण की क्रिया पी.एच. मान 5.0 से कम होने पर बहुत गम्भीर हो जाती है। ताँबा, जस्ता तथा बोरॉन की विलयता अधिक पी.एच. मान पर कम होने के कारण पौधे इन्हें उचित मात्रा में अवशोषित नहीं कर पाते हैं जिससे पौधों की बढ़वार और उपज प्रभावित होती है। मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों की अकार्बनिक एवं कार्बनिक कणों की मात्रा, आकार, आकृति, कणो का विन्यास एवं रन्ध्रावकाश खनिजों के संगठन पर निर्भर करता है जो फसलों को प्रकृति के अनुसार अलग-अलग प्रभावित करती है। गुणवत्तायुक्त फल उत्पादन हेतु विभिन्न फल-फसलों के लिए मृदा की उपयुक्तता अलग-अलग होती है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक एवं [3]तकनीकी अधिकारी

आम

आम की बागवानी के लिए गहरी दोमट और कार्बनिक पदार्थ की पर्याप्त मात्रा के साथ जल निकासयुक्त मृदा उपयुक्त होती है। मृदा का पी.एच. मान 5.5 से 7.5 तक सबसे अच्छा माना जाता है। अधिक अम्लीय (पी.एच. 5.5 से कम) एवं क्षारीय मृदाएँ (पी.एच. 8.2 से ऊपर) आम की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है। मृदाओं में लवण तथा सोडियम की अधिकता आम के पौधों की बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। आम की बागवानी के लिए मृदा में

उचित जल निकास एवं वायु संचार के साथ-साथ उचित जल संधारण होना चाहिए।

अमरूद

अमरूद की खेती के लिए गहरी बलुई दोमट मृदा उपयुक्त होती है। 4.5-8.2 तक पी.एच. मान वाले मृदा में इसकी सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है। क्षारीय मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ एवं रसायनिक सुधारकों का प्रयोग कर इस प्रकार की भूमि में भी अमरूद की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए जल प्रबंध की व्यवस्था उचित होनी चाहिए। फल गुणवत्ता में वायुमण्डलीय तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

केला

दोमट मृदा एवं भुरभुरी उपजाऊ मृदा, जिसका पी. एच. मान 5.0-7.0 हो, केला के उत्पादन के लिए उपयुक्त होती है। 120-200 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र इसके लिए सर्वोत्तम होते हैं। केला की खेती के लिए मृदा में नमी की उचित मात्रा होना आवश्यक है। इसके जड़ों के समुचित विकास हेतु जल निकास व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए जिससे मृदा से वायु संचरण उचित हो सके।

पपीता

अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा, जिसका पी.एच. मान 5.0-7.0 हो, पपीता के लिए उत्तम होती है। पपीता गर्म जलवायु में ठीक तरह से फलता है। अधिक वर्षा एवं तेज हवा वाले क्षेत्र इसके लिए उपयुक्त नहीं है। मृदा तापमान के उतार चढ़ाव का प्रभाव पोषक तत्वों के अवशोषण पर पड़ता है। सिंचाई मृदा की ऊष्मा धारिता, ऊष्मा चालकता और मृदा के ऊपर वायु की आर्द्रता बढ़ाती है। इन सब से मृदा का तापमान घटता है जबकि शरद ऋतु में की गयी सिंचाई मृदा के न्यूनतम तापमान को बढ़ाती है।

लीची

उपजाऊ, जल निकास युक्त, हल्की अम्लीय एवं उदासीन दोमट मृदा, जिसका पी.एच. मान 5.0-7.0 हो, लीची के लिए उत्तम होती है। मृदा में नमी एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उचित मात्रा में उपलब्धता गुणवत्ता युक्त उपज के लिए आवश्यक है।

आँवला

आँवला हल्की से गहरी बलुई दोमट मृदाओं में लगाया जा सकता है। यह अन्य प्रकार की भूमि में भी उगाया जा सकता है जिसका पी.एच. मान 6.0 से 8.5 के मध्य है। मृदा जल संरक्षण की विधि को अपनाकर अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

बेल

बेल की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। इसको 5.0 से 10.0 पी.एच. मान वाली भूमि में उगाया जा सकता है। मृदा में नमी की उचित मात्रा न होने पर उपज गुणमय नहीं होती है।

मृदा परीक्षण

मृदा परीक्षण की उपयोगिता को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि मृदा के पोषक तत्वों का पौधों द्वारा कैसे और किस तरह अवशोषण किया जाता है। जड़ों द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए मृदा में पोषक तत्व घुली हुई अवस्था में जड़ों के पास उपलब्ध होना चाहिए। पौधों की जड़ों तक पोषक तत्व द्रव्यमान प्रवाह एवं विसरण के माध्यम से पहुँचते हैं जबकि मूल अपरोधन की क्रिया द्वारा जड़ें स्वयं पोषक तत्वों तक जाती है। पोषक तत्व जड़ों के अग्र भाग द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। पौधों द्वारा निरन्तर पोषक तत्व ग्रहण किये जाते रहने के कारण पौधों की जड़ों के समीप इन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, जब द्रव्यमान-प्रवाह प्रक्रम पूरी तरह से पोषक तत्वों को जड़ों तक नहीं पहुँचा पाता व विसरण प्रक्रिया द्वारा पोषक तत्व पहुँचाये जाते हैं। इनके लिए नमी एक महत्वपूर्ण कारक है। इन क्रियाओं हेतु मृदा की अच्छी गुणवत्ता का होना अत्यावश्यक है। मृदा परीक्षण हेतु मृदा नमूने वैज्ञानिक विधि द्वारा सक्रिय जड़ क्षेत्र से लेने चाहिए जिससे मृदा विश्लेषण के द्वारा उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु सही आंकलन किया जा सके और मृदा स्वास्थ्य पर रासायनिक खादों का प्रतिकूल प्रभाव भी न पड़े।

मृदा विश्लेषण मृदा में पोषक तत्वों की पौधों के लिए उपलब्धता के लिए किया जा है। पौधों के लिए पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए मृदा में पादप उपलब्ध मात्रा का निर्धारण करने हेतु मृदा परीक्षण का कार्य तीन चरणों में किया जाता है।

- मृदा के नमूने एकत्र करना।
- प्रयोगशाला में मृदा के नमूनों का विश्लेषण करना।
- मृदा विश्लेषण के परिणामों के आधार पर खाद एवं उर्वरकों की संस्तुति करना जिससे मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और गुणवत्ता युक्त उपज के साथ अधिक आय प्राप्त हो सके।

मृदा नमूना लेने की सही विधि

मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की सही मात्रा का आकलन करने के लिए मृदा परीक्षण किया जाता है जिससे पौधों को उनकी माँग के अनुरूप पोषक तत्वों की मात्रा उपलब्ध कराई जा सके। नमूने को लेने के लिए खेत की ढलान, क्षेत्रफल तथा फसलों की किस्म के अनुसार उचित भागों में बाँट लेते है। खेत का प्रत्येक भाग लगभग समान होना चाहिए तथा उसका क्षेत्रफल 0.4 हेक्टेयर से अधिक नहीं होना चहिए। इसमें से 15-20 स्थानों से एक वर्षीय फसलों हेतु 15-20 से.मी. एवं फल वृक्ष लगाने के लिए 0-25 से.मी., 25-50 से.मी. एवं 50-75 से.मी. गहराई के नमूने अलग-अलग लेने चाहिए। एक नमूने हेतु ली गयी सभी स्थानों से एकत्र की गयी मिट्टी को एक साफ स्थान पर रख कर अच्छी तरह से मिला लें। इसके बाद इस ढेर को फैला कर चार भागों में बाँट कर आमने-सामने के दो भागों को हटा दें तथा शेष दो भागों को पुनः मिलाकर चार भागों में बाँट दें। इस प्रकार पूरी मात्रा को घटाते हुए अन्त में 500 ग्रा. से 1 कि.ग्रा. मात्रा साफ थैली में भर कर

उस पर किसान का नाम, पता, नमूने की पहचान चिन्ह लिखकर लगा दें। एक ऐसा ही लेबल थैली के अन्दर रख दें। मृदा नमूना वर्षा, सिंचाई, खाद तथा उर्वरकों के प्रयोग, फसल का कूड़ा जलाने आदि के तुरन्त बाद नहीं लेना चाहिए। मृदा परीक्षण में पी. एच. मान, विद्युत चालकता, जैविक पदार्थ, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा का पता लगाया जाता है। विश्लेषण के आधार पर उगायी जाने वाली फसल/फल वृक्ष के अनुसार पोषक तत्वों की उचित मात्रा की पूर्ति हेतु संस्तुति की जाती है।

नमूना लेते समय सावधानियाँ

- नमूना उस स्थान से नहीं लेना चाहिए जहाँ पर खाद का ढेर, मेड़ या सिंचाई की नाली हो।
- यदि खेत में ऊसर हो तो उसके नमूने अलग और सामान्य खेत का अलग नमूना लेना चाहिए।
- मृदा नमूनों को खाद एवं उर्वरकों के संपर्क में न आने दें।
- गीले नमूनों को छाया में सुखाकर ही थैली में भरें।
- निम्नलिखित स्थितियों के तुरन्त बाद मृदा का नमूना नहीं लेना चाहिए।
  - खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग,
  - वर्षा,
  - सिंचाई एवं
  - फसल के बचे हुए पदार्थों को जलाने या सड़ाने के बाद।

आँवला के उपयोग अनेक

देवेन्द्र पाण्डेय[1] एवं अखिलेश कुमार[2]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आँवला या इंडियन गूजबेरी को यूफोरबिएसी कुल के फाइलेन्थस वंश में वर्गीकृत किया गया है। ग्रीक भाषा में फाइलेन्थस का अर्थ उन पेड़-पौधों से होता है जिनकी पत्तियों पर फूल लगते हैं। सर्वप्रथम लीनियस ने आँवला को फाइलेन्थस वंश में रखा था। बाद में गार्टेन द्वारा आँवला को इमब्लिका वंश में वर्गीकृत किया गया जिसके परिणामस्वरूप ही आँवला का वैज्ञानिक नाम *इमब्लिका ऑफीसिनेलिस गार्टेन* पड़ा।

आँवला, भारतीय मूल का एक औषधीय पौधा है। हिन्दू धर्म में इसके फल एवं वृक्ष को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। अपने अनुपम औषधीय एवं पोषक गुणों के कारण वेद, स्कन्द पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण, रामायण, कादम्बरी, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि पौराणिक भारतीय साहित्यों में इसका वर्णन विद्यमान है। महर्षि चरक ने तो इस फल को जीवन दात्री अथवा अमृत फल के समान लाभकारी बताया है। इसी कारण से आँवला को अमृत फल तथा इसके वृक्ष को कल्प वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है। अपने विशिष्ट गुणों यथा प्रति इकाई उच्च उत्पादकता, विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं भूमि हेतु उपयुक्तता, पोषक एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण एवं विभिन्न रूपों (खाद्य, प्रसाधन एवं आयुर्वेद) में उपयोग में लाये जाने के कारण आँवला भारत में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। भारत के विभिन्न भागों में आँवला का फल साल के दस महीने (उत्तर एवं पश्चिम भारत में नवम्बर से फरवरी, दक्षिण भारत में अप्रैल से सितम्बर तथा पूर्वोत्तर भारत में अक्टूबर से जनवरी) तक उपलब्ध रहता है।

आँवला का उत्पादन भारत, श्रीलंका, क्यूबा, प्यूर्टो रिको, अमेरिका, ईरान, इराक, जावा, ट्रिनिडाड, पाकिस्तान, मलाया, चीन और पनामा में होता है। एक नवीन आँकड़े के अनुसार देश में आँवला के उत्पादन का कुल क्षेत्रफल लगभग 50,000 हेक्टेअर तथा कुल उत्पादन 1.75 लाख टन है। उत्तर प्रदेश आँवला का सर्वाधिक उत्पादक राज्य है। इसके अलावा आँवला का उत्पादन महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आँध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु राज्यों के शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, हरियाणा के अरावली क्षेत्र में तथा पंजाब एवं हिमाचल के कांडी क्षेत्र में किया जाता है। उत्तर प्रदेश में आँवला का उत्पादन प्रतापगढ़, रायबरेली, वाराणसी, बाँदा, जौनपुर, सुल्तानपुर, कानपुर, आगरा, मथुरा, इटावा एवं फतेहपुर जिलों में किया जाता है। किन्तु इसका सबसे अधिक उत्पादन प्रतापगढ़ जिले में होता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]शोध सहायक

धार्मिक महत्व

ऐसा कहा जाता है कि भगवान विष्णु के थूकने पर उनके मुख से चन्द्रमा के समान कांतिमान एक बिन्दु प्रकट होकर पृथ्वी पर गिरी। उसी से आमलक (आँवला) का महान वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो सभी वृक्षों का अदिभूत कहलाता है। यह सभी पापों को दूर करने वाला एक वैष्णव वृक्ष है। इसके मूल में विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कंध में परमेश्वर भगवान रूद्र, शाखाओं में मुनि, टहनियों में देवता, पत्तों में वसु, फूलों में मरूद्‌गण तथा फलों में समस्त प्रजापति वास करते हैं। अमलक सर्वदेवस्य परम है। अतः विष्णु भक्तों के लिए यह परम पूज्य है।

चरक ने आँवला के फल को जीवन दात्री अथवा अमृत के समान माना है। इसलिए प्राचीनकाल से भारत में इसको पवित्र माना जाता है। इसके पेड़ की प्रकृति माता के रूप में भी पूजा की जाती है।

हिन्दुओं द्वारा कार्तिक मास में कम से कम एक दिन आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन करना अत्यन्त शुभ माना जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार आँवले के फलों का लगातार 40 दिनों तक सेवन करते रहने से नयी शारीरिक स्फूर्ति आती है तथा काया-कल्प हो जाता है।

पोषक महत्व

आँवला का फल अष्ठिल होता है। इसकी गूदेदार बाह्य फलभित्ति खायी जाती है। इसके फलों में विटामिन 'सी' का आधिक्य होता है। इसके अतिरिक्त इसके फल कार्बोहाइड्रेट, लवण (फास्फोरस, कैल्सियम एवं लोहा), रेशा एवं अन्य विटामिन (थायमिन एवं राइबोफ्लेविन) में धनी होते हैं। आँवला के फल में टैनिन होता है, जिससे प्रत्येक अणु में गैलिक अम्ल, इलेजिक अम्ल तथा ग्लूकोज होता है। यह विटामिन 'सी' के क्षरण को रोकता है जिससे ताजे और सूखे दोनों प्रकार के आँवले में स्कर्वी रोधक क्षमता अधिक होती है। खाद्य फलों में आँवला एक ऐसा दुर्लभ फल है जिसमें विटामिन 'सी' एवं टैनिन दोनों अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

औषधीय महत्व

चिरयौवन एवं दीर्घायु प्रदान करने वाला, रसायन द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ, आयुर्वेद में अभूतफल नाम से संबोधित तथा औषधियों में श्रेष्ठ फल है आँवला। आँवला के पौधे के प्रत्येक भाग (फल, बीज, पत्तियाँ, जड़, छाल एवं पुष्प) का विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों में इस्तेमाल किया जाता है। आँवले से च्यवनप्राश, त्रिफला, त्रिफला चूर्ण, त्रिफलामासी, अमलाकी रसायन, अशोकारिष्ट, अमृत कलश, ट्राईलैक्स, आँवला प्लैक्स, न्यूट्राले, टाइलोफोरा, लिव-52 इत्यादि औषधियों का निर्माण किया जाता है। आँवले में विटामिन 'सी', टैनिन एवं फ्लेवोनाइड्स आदि अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी वजह से इसमें ऐंटीऑक्सीडेन्ट गुण अधिक होता है और बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। इसके सेवन से अनेक प्रकार के विकार जैसे क्षय रोग, दमा, खून का बहना, स्कर्वी, मधुमेह, खून की कमी, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, कैंसर अवसाद, मस्तिष्क विकार, श्वास रोग, वातव्याधि (गठिया), अतिसार, इंफ्लूएन्जा, ठंडक, समय से पहले बुढ़ापे आदि से बचा जा सकता है। इसका फल तीक्ष्ण, शीतलता दायक, मूत्रल और मृदुरेचक होता है। एक चम्मच आँवला के रस को यदि शहद के साथ मिला कर सेवन किया जाय तो इससे कई

सारणी 1: आँवला उगाये जाने वाले प्रदेश एवं उनके अन्तर्गत क्षेत्र

प्रदेश	आँवला उगाये जाने वाले क्षेत्र
जम्मू एवं कश्मीर	जम्मू, पठान कोट, उघमपुर
हिमाचल प्रदेश	चम्बा, काँगड़ा, जोगिन्दर नगर
पंजाब	जालन्धर, अमृतसर, होशियारपुर
उत्तराखंड	देहरादून, कोटद्वार, हरिद्वार
राजस्थान	अजमेर, अलवर, बीकानेर, जोधपुर, कोटा, जयपुर
उत्तर प्रदेश	मथुरा, आगरा, कानपुर, मिर्जापुर, ललितपुर, बाँदा, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, वाराणसी, सुल्तानपुर
मध्य प्रदेश	भोपाल, ग्वालियर, शिवपुरी, इन्दौर, बेतुल, बालाघाट, सतना, सिधी, पन्ना
महाराष्ट्र	जलगाँव, अकोला, पूना, नागपुर, नादेड़
आन्ध्र प्रदेश	अन्नतपुर, चित्तूर, निलौर
तमिलनाडु	सलेम, डिन्डीगुल, टूटीकूडी
कर्नाटक	बीजापुर, रायचूर, बेलगाम
गुजरात	आन्नद, अहमदाबाद, बडोदरा, कच्छ, खेड़ा, सुरेन्द्रनगर, मेहसाना

प्रकार के विकार जैसे क्षय रोग, दमा, खून का बहना, स्कर्वी, मधुमेह, खून की कमी, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, कैंसर, अवसाद एवं अन्य मस्तिष्क विकार, श्वास रोग, वातव्याधि, अतिसार, इन्फलूएन्जा, ठंडक, समय से पहले बुढ़ापा एवं बालों का झड़ना एवं सफेद होने से बचा जा सकता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यदि एक चम्मच ताजे आँवले का रस, एक कप करैला के रस में मिश्रित कर दो महीने तक प्रातः काल सेवन किया जाये तो प्राकृतिक इन्सुलिन का श्राव बढ़ जाता है। इस प्रकार यह मधुमेह रोगी में रक्त मधु को नियंत्रित कर शरीर को स्वस्थ्य रखता है। साथ ही रक्त की कमी, सामान्य दुर्बलता तथा अन्य अनेक परेशानियों से मुक्ति दिलाता है। इसका प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से कुछ ही दिनों में शरीर में नई स्फूर्ति आती है। यदि ताजे फल प्राप्त न हों तो इसके सूखे चूर्ण को शहद के साथ मिश्रित कर सेवन किया जा सकता है। आँवला के इन्हीं गुणों के कारण इसे 'रसायन' एवं 'मेघा रसायन' (बुद्धि का विकास करने वाला) की श्रेणी में रखा गया है। इसकी पत्तियों को पानी में उबालने के पश्चात् उस पानी से कुल्ला करने पर मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं। ऐसा इसकी पत्तियों में विद्यमान फिनॉल की अधिकता के कारण होता है। आँवला की मुलायम पत्तियों को पीस कर मट्ठा में मिला कर सेवन करने से भोजन अपच एवं अतिसार जैसे रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। आँवले के फूल को यदि खाया जाये तो वह मृदुरेचक (पेट साफ) का कार्य करता है। आँवला के जड़ का सेवन पीलिया रोग को दूर करने में सहायक होता है। आँवला के बीजों में पाये जाने वाले तेल में बालों की वृद्धि की अद्भुत क्षमता होती है।

पशु पालन में उपयोग

आँवला की पत्तियाँ एवं फल पशुओं के लिए अच्छा चारा हैं। गाय एवं भैसों को पेट दर्द में उपचार के लिए आँवला की पत्तियों का पेस्ट

सारणी 2: आँवले के फलों में पाये जाने वाले विभिन्न अवयवों की अनुमानित मात्रा

अवयव	मात्रा (%)	अवयव	मात्रा (मि.ग्रा./100 ग्रा. गूदा)
पानी	77.0-82.2	विटामिन 'सी'	200-1300
प्रोटीन	0.50	निकोटिनिक अम्ल	0.20
वसा	0.10	कैरोटीन	0.01
अम्लता	3.28	थियामिन	0.03
रेशा	1.9-3.4	राइबोफ्लेविन	0.05
कार्बोहाइड्रेट	14.1-21.9	नियासिन	0.18
कुल शर्करा	5.09	ट्रिपटोफेन	3.00
पेक्टिन	0.59	मिथियोनिन	2.00
टैनिन	2.73	लाइसिन	17.00
कुल लवण	0.5-0.7	कैलोरीफिक मूल्य	58.0
कैल्सियम	0.012-0.050	लोहा	1.20
फॉस्फोरस	0.020-0.026	क्रोमियम (पी.पी.एम.)	2.5
		जस्ता (पी.पी.एम.)	4.0
		ताँबा (पी.पी.एम.)	3.0

बनाकर दिन में दो बार दिया जाता है। आँवला की पत्तियों का उपयोग रेंडरपेस्ट एवं एंथ्रेक्स बीमारियों में भी किया जाता है।

चर्म उद्योग

आँवला के फलों, पत्तियों एवं छाल में अत्यधिक मात्रा में टैनिन होने के कारण चर्म उद्योग (चमड़े की सफाई) में इसका अधिक महत्व है। यह उद्योग काफी निर्यातोन्मुख उद्योग है तथा इसमें जंगली एवं देशी आँवला का उपयोग अधिक होता है।

सौन्दर्य प्रसाधन

अनेक प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियों में आँवला एक प्रमुख घटक के रूप में प्रयोग होता है। आँवला आधारित शैम्पू एवं तेल की बाजार में काफी माँग है। आँवला के फलों का प्रयोग बाल रंगने के द्रव में भी किया जाता है। आँवला से सौन्दर्य प्रसाधन के उपयोग होने वाले अन्य उत्पादों को बनाने की अच्छी संभावनाएँ हैं जो विदेशी बाजारों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हैं।

प्रसंस्करण

कसैला होने के कारण ताजे आँवला का उपयोग कम होता है। अतः इससे अधिकतर परिरक्षित पदार्थ बनाए जाते हैं। आँवला सुपारी, गूदा, जैम, जूस, स्कवैश, आर. टी. एस., मुरब्बा, शर्करा के घोल में आँवला की फाँके, कैण्डी, चूर्ण, अचार, शुष्क आँवला आदि आँवला से तैयार किये जाने वाले प्रमुख उत्पाद हैं। इसकी कंचन एवं कृष्णा किस्में कैंडी, जैम एवं मुरब्बा हेतु, चकैइया किस्म अचार

कंचन

नरेन्द्र-7

नरेन्द्र-10

कृष्णा

तथा सिरप हेतु, नरेन्द्र आँवला-6 मुरब्बा, जैम एवं कैण्डी, नरेन्द्र आँवला-7 च्यवनप्राश, चटनी, अचार, जैम, स्कवैश एवं बनारसी किस्म सुखाने हेतु उपयुक्त पायी गयी हैं।

पर्यावरणीय महत्व

आँवला एक अत्यधिक फलत देने वाला पेड़ है जिस पर चिड़ियों एवं जंगली जानवरों का आक्रमण नहीं होता है। यह पौधा गम्भीर रोग एवं कीटों के प्रकोप से भी सुरक्षित रहता है। जिसके करण रोगनाशक एवं कीटनाशक रसायनों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है और पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है।

करौंदा के व्यावहारिक गुण

ए.के. सिंह[1] एवं जे.पी. सिंह[2]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

करौंदा भारतीय मूल का शुष्क क्षेत्र में पैदा किया जाने वाला वह फल है जो उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से फलता-फूलता है। भारत में करौंदा का उत्पादन राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश के सीमित क्षेत्रों में किया जाता है। करौंदा में व्याप्त पोषक तत्वों के प्रसंस्करण से इसके उपयोग के मद्देनजर इसे विश्व स्तर पर उत्पादित करने का प्रयास किया जा रहा है।

करौंदा में लोहा और विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। करौंदा से शरीर में रक्त की मात्रा में वृद्धि होती है। इसमें ऐंटीऑक्सीडेन्ट घटक भी पाया जाता है।

करौंदा विद्यमान अव्यवों के कारण इसका औषधि के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसके जड़ की रस को लुम्बागो, छाती और गुप्त रोग के उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है। यह पेट के कीड़ों के उपचार में भी इसका प्रयोग होता है। इसके वृक्ष की पत्ती का रस बुखार के उपचार के लिए तथा पत्तियाँ का असर रेशम के कीड़ों के चारों के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

करौंदा से अचार के अलावा जेली, जैम, स्क्वैश, सिरप और चटनी भी बनाया जाता है। करौंदा के उत्पादों का विदेशी बाजारों में अत्यधिक माँग है। करौंदा के शुष्क फल का पोषक मान निम्नांकित है।

अवयव		मात्रा
नमी	-	18.2%
वसा	-	9.6%
खनिज	-	2.8%
फास्फोरस	-	0.06%
प्रोटीन	-	2.3%
ऊर्जा	-	364 कैलोरी
कैल्सियम	-	0.16%
लोहा	-	39.1%

करौंदा के पौधों में काँटे होने के कारण इनसे बाड़ बनाया जा सकता है। यही कारण है कि करौंदा को दीवार के चारों किनारों पर लगाते हैं। खेतों के मेड़ों पर तथा करौंदा को दो फसलों के बीच में भी लगाया जा सकता है। करौंदा की पत्तियाँ आसानी से सड़कर गल जाती है। इससे भूमि की उर्वरता भी बढ़ती है। इससे जमीन में जैविक तथा खनिज पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है। करौंदा के नीचे जमीन में वाष्पोत्सर्जन दर कम होती है तथा नमी कायम रहती है। शुष्क क्षेत्र के लिए यह एक अच्छा पौधा है।

मृदा एवं जलवायु

करौंदा का वृक्ष अत्यन्त सहिष्णु होता है। इसे

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]शोध सहायक

सभी प्रकार के मिट्टियों में उगाया जा सकता है। करौंदा की कुछ किस्में अत्यंत ही पथरीली एवं अनुत्पादक भूमि में भी उगायी जा सकती है। जल के निकास की समस्या वाले स्थान में भी यह सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अधिक पाला वाले क्षेत्र में इसके पौधों को क्षति होती है।

किस्में

करौंदे में रंग के आधार पर तीन किस्में (गुलाबी, हरा-गुलाबी तथा सफेद) पायी जाती है। गुलाबी का फल प्रारम्भ में सफेद तथा पकने के बाद गुलाबी रंग का होता है। हरा-गुलाबी किस्म का रंग मटीला हरा तथा पकने पर गुलाबी तथा सफेद किस्म पकने पर भी सफेद ही बना रहता है।

करौंदा के अच्छे उत्पादन के लिये चयन विधि द्वारा पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय ने निम्नलिखित किस्में विकसित की है।

पंत मनोहर : मध्यम ऊँचाई, घनी झाड़ी, फल स्कंत पृष्ठ तल पर गहरी गुलाबी आभा लिए हुये होती है। फल का औसत भार 3.49 ग्राम और तीन-चार बीज पाये जाते है। उपज 35 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है।

पंत सुदर्शन : मध्यम ऊँचाई फल गुलाबी आभा लिए हुये औसत फल भार 3.46 ग्राम होता है। उपज 32 कि.ग्रा. प्रति पौधा होता है।

पंत सुवर्णा : इसके पौधे ऊपर की तरफ बढ़ने वाले और झाड़ी नुमा होते हैं। फल की पृष्ठभूमि गहरी हरी तथा फल का औसत भार 3.62 ग्राम होता है। उपज 25 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी पायी जाती है।

प्रवर्धन

करौंदा के पौधे मुख्यतः बीज से तैयार किये जाते हैं। अच्छी तरह पके हुए फलों से जुलाई-अगस्त में बीज निकाल कर यथाशीघ्र पौधशाला में बो देना चाहिए। बीजू पौधे दो वर्ष बाद बाग में रोपने लायक हो जाते हैं। करौंदा के पौधे सॉफ्ट उड़ ग्रेफ्टिंग बूटी और स्टूल दाब लगाकर भी तैयार करते हैं।

रोपाई

बाड़ लगाने के लिये करौंदा के पौधों को 60 से.मी. की दूरी पर रोपना चाहिए। गड्ढों का आकार 30×30×30 से.मी. होनी चाहिए तथा गड्ढों को मिट्टी एवं अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद (1:3 अनुपात में) मिलाकर भरने के बाद बीच में लगाना चाहिए। पौधा लगाने के पूर्व गड्ढों की एक सिंचाई भी करनी चाहिए जिससे गड्ढों की मिट्टी बैठ जाये। गड्ढों की दूरी 3 × 3 मी. होनी चाहिए। करौंदा लगाने का उचित समय जून-जुलाई होता है। सिंचित क्षेत्रों में पौधे मार्च-अप्रैल में भी लगाये जा सकते हैं।

खाद-उर्वरक

पौधे लगाते समय सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट एक और तीन के अनुपात में (1:3) गड्ढों में भरना चाहिए। प्रारम्भिक वर्षों में नाइट्रोजन के प्रयोग से पौधे तेजी से बढ़ते है और बाड़ जल्दी तैयार हो जाती है। एक पौधे को 5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद एवं 100 ग्राम यूरिया प्रति वर्ष उम्र के हिसाब से बढ़ा कर तीन वर्ष तक अवश्य देना

चाहिए। यूरिया को 5 भागों में बाँटकर दो माह के अंतर से देना उपयोगी रहता है। यूरिया को पेड़ के फैलाव में छिटककर गुड़ाई कर देना चाहिए।

सिंचाई और देखभाल

नये लगाये गये पौधों को गर्मियों में 6-7 दिनों एवं सर्दियों में 14-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पौधों की कीट एवं रोगों से रक्षा हेतु उपयुक्त छिड़काव समयानुसार करना चाहिए। 3-4 वर्ष में पौधों का आकार बड़ा हो जाता है। इसके बाद विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं रहती।

कीट एवं रोग

प्रारम्भिक अवस्था में पत्ती खानी वाली गिगर नयी पत्तियों को खा जाती है जिससे पेड़ की बढ़वार मारी जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 2 मि.ली. थायोडीन या इन्डोसल्फान अथवा 1 मि.ली. पानी में घोल बनाकर झाड़ियों पर छिड़कनी चाहिए।

करौंदा में श्यामव्रण रोग पत्तियों और फलों को अधिक प्रभावित करता है। रोगग्रस्त पत्तियों पर छोटे अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते है जो बाद में बढ़ कर गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। रोगी पत्तियाँ गिर जाती हैं। फलों तथा तने पर भी इस रोग के घाव बन जाते हैं। रोग के उपाय के लिये 2 ग्रा. हलाइटाक्स 50 या फाइटोलान नामक रसायन को एक लीटर पानी में घोल कर झाड़ियों पर छिड़कना चाहिए। तने के घावों को खुरच कर उन पर ब्लाइटाक्स 50 एवं अलसी के तेल (1:3) लेप बनाकर लगाना चाहिए।

तुड़ाई और उपज

करौंदा रोपाई के दूसरे वर्ष फलने लगता है। फल अगस्त-सितम्बर तक पककर तैयार हो जाते हैं। एक मार्ग से लगभग 30-33 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो जाते हैं।

फल गुणवत्ता

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ में करौंदा के 15 जननद्रव्यों का विश्लेषण किया गया जिसमें निम्नलिखित तत्व मुख्य रूप से पाये गये।

- विटामिन 'सी' - 21.34 से 28.12 मि. ग्रा./100 ग्राम
- कुल ठोस पदार्थ - 6.40 से 9.00
- अम्ल प्रतिशत - 2.12 से 2.80

कच्चे फल में

- ऐंटीऑक्सीडेन्ट - 1190.00 मि.ग्रा/मि. ली. ए ई ए सी से 3669.75 मि. ग्रा. /मि. ली.
- कुल कैरोटिनाइड्स - 0.233 से 0.448 मि. ग्रा./मि.ली.
- फेनोल - 0.049 से 0.123 मि. ग्रा./मि.ली.
- कुल फ्लेवोनाइड - 0.048 से 0.121 मि. ग्रा./मि.ली.

पके फल में

- ऐंटीऑक्सीडेन्ट - 1643.25 से 3762.5 मि.ग्रा./मि.ली. ए ई ए सी
- कुल कैरोटिनाइड्स - 0.317 से 0.752 मि.ग्रा./मि.ली.
- फेनोल - 0.067 से 0.131 मि.ग्रा./मि.ली.
- कुल फ्लेवोनाइड - 0.162 से 0.986 मि.ग्रा./मि.ली.

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटन न हिय को भूल।

अंग्रेजी पढ़ीके जदपि, सब गुण होत प्रवीण
पर निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

खीरा की खेती

वी.के. सिंह[1], कामिनी सिंह[2] एवं अनुराग सिंह[3]
केन्द्रीय उपोषण बागवानी संस्थान, लखनऊ

उत्पत्ति एवं इतिहास

खीरा का उत्पति स्थान भारत माना जाता है। यहाँ से इसका विस्तार चीन, उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी यूरोप में हुआ। किन्तु प्रामाणिकता के आधार पर खीरा की खेती सबसे पहले कोलम्बस द्वारा सन् 1494 में हैती में की गयी। इसके बाद इसकी खेती संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि स्थानों में की गयी।

यह एक चढ़ने या फैलने वाला एकवर्षीय बेल है। इस पर लम्बे, मोटे, बेलनाकार तथा अनेक रूप-रंग और आकार के फल लगते हैं। इसका उत्पादन भारत तथा विश्व के शीतोष्ण और उपोष्ण क्षेत्रों में काफी मात्रा में किया जाता है। इसकी कुछ किस्मों के फल 25-28 से.मी. लम्बे, 8-10 से.मी. व्यास वाले और मोटे छिलके के होते हैं जबकि कुछ अन्य किस्मों के फल छोटे, नरम एवं पतले छिलके के होते हैं। फलों का रंग सफेदी लिए हुए हल्के हरे से लेकर गहरे हरे रंग तक होता है। यह पकने के पश्चात पीला या भूरा हो जाता है।

वितरण एवं उपयोग

अनुकूल क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण भारत के प्रत्येक राज्य में इसका उत्पादन आसानी से किया जा सकता है। खीरा का उपयोग मुख्यतया सलाद, रायता एवं अचार के रूप में किया जाता है। इसके फलों की तासीर ठंडी होने के कारण यह पीलिया, कब्ज आदि रोगों में लाभकारी सिद्ध होता है। इसके बीजों का उपयोग आयुर्वेद की दवाओं में भी किया जाता है। इसके बीजों से निकाला गया तेल शरीर एवं मस्तिष्क के लिए अत्यधिक उपयोगी पाया गया है। खीरे में पोषक तत्वों का विवरण निम्नलिखित दर्शाया गया है।

आहार मूल्य
(प्रति 100 ग्रा. खाने योग्य भाग)

नमी	96.3 ग्रा.
वसा	0.1 ग्रा.
रेशा	0.4 ग्रा.
कैलोरी	13.0 ग्रा.
प्रोटीन	0.4 ग्रा.
खनिज	0.3 ग्रा.
अन्य कार्बोहाइड्रेट्स	2.5 ग्रा.
मैग्नीशियम	11.0 मि. ग्रा.
फॉस्फोरस	25.0 मि. ग्रा.
कैल्सियम	10.0 मि. ग्रा.
ऑक्सेलिक अम्ल	15.0 मि. ग्रा.
लोहा	1.5 मि. ग्रा.

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]सीनियर रिसर्च फेलो एवं [3]शोध सहायक

वानस्पतिक विवरण

खीरा एकवर्षीय लता है। इसकी पत्तियाँ सरल, सवृन्त, एकान्तर तथा पर्णिवत होती हैं। मूलतः यह एकलिंगी होता है जिसमें नर एवं मादा के फूल एक ही पौधे पर अलग-अलग जगह पर लगते हैं। नर फूल गुच्छे में उत्पन्न होकर पुष्पवृन्त पर जल्दी लगते हैं जबकि मादा फूल अकेले तथा लम्बे पुष्पवृन्त पर देरी से उत्पन्न होते हैं। खीरा एक परपरागित फसल है तथा इसमें परागण अधिकांशतः मधुमक्खियाँ एवं घरेलु मक्खियाँ द्वारा किया जाता है।

जलवायु

खीरा गर्म मौसम में उत्पादित होने वाली फसल है। इसकी वृद्धि के लिये 27-35 डिग्री से.ग्रे. तापमान की आवश्यकता होती है। अधिक ठंडक तथा पाला के प्रति संवेदनशील होने के कारण अधिक तापमान या आर्द्रता की स्थिति में यह दहिया/खर्रा रोग से प्रभावित हो जाता है।

भूमि की तैयारी

खीरा के लिए जल निकास के उत्तम प्रबंध वाली बलूई या दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। सामान्यतया इसकी खेती नदियों के किनारे की जाती है। 6-7 पी.एच. मान वाली मृदा में इसका सर्वोत्तम उत्पादन हो सकता है। इसकी पैदावार के लिए खेत की 3-4 बार जुताई कर नाली एवं थाले बना लेते हैं। इसमें बीज की बुआई खेत में नमी पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिए। जिससे बीजों का अंकुरण एवं वृद्धि बेहतर ढंग से हो सके।

किस्में

चाइना : यह एक पछेती किस्म है जो अधिक उपज देने वाली है। इसका फल 50 से.मी. लम्बा एवं पतले हरे रंग का गुदा वाला सफेद तथा कुरकुरा छिलका हरे रंग का सफेद कांतियुक्त होता है।

प्वाइनसेट : यह प्रजाति नेशनल सीड कारपोरेशन द्वारा विकसित की गयी है। इसका फल 40-50 से. मी. लम्बा, गहरा हरे रंग का होता है। यह डाउनी मिल्डयू रोग प्रतिरोधक प्रजाति है।

जैपेनिज लौंगग्रीन : यह आयतित प्रजाति है जो 45 दिन में तैयार होता है जिसका फल 30-40 से.मी. लम्बा, हरा एवं पतले हरे रंग का सफेद गूदा वाला कोतियुक्त फल होता है।

इसके अतिरिक्त प्वाइनसेट, लांगग्रीन, सुपरग्रीन, स्ट्रेट-8, बालम खीरा, पूना खीरा, सिक्किम खीरा, शीतल, पूसा संयोग (संकर) कल्यानपुर हरा लम्बा (प्रौ. विश्वविद्यालय कानपुर द्वारा विकसित) आदि खीरा की मुख्य प्रजातियाँ हैं।

बुवाई तकनीक

खीरा की बोआई के लिए नाली एवं थाला विधि सबसे उत्तम है। इस विधि में खेत की तैयारी के बाद 2-2.5 मी. की दूरी पर 45 से.मी. चौड़ी एवं 30-40 से.मी. गहरी नालियाँ बनाते हैं। इन नालियों के दोनों किनारों पर 30-45 से.मी. की दूरी पर बीज या पौध की बुआई करते हैं। एक जगह पर दो

बीज लगाना चाहिए। बीज जमने के उपरांत एक पौधा निकाल दें। चूँकि बीजों का अंकुरण 20 डिग्री से.ग्रे. से कम तापमान पर ठीक प्रकार से नहीं होता है अतः बीजों को सीधे खेत में ना बो कर प्लास्टिक की थैली या प्रो ट्रे में लगाना चाहिए। इसमें 1/3 भाग मिट्टी, 1/3 भाग बालू तथा 1/3 भाग गोबर की खाद मिलाकर प्रो ट्रे को भर लें। इस प्रकार प्रो ट्रे के भरने के बाद प्रत्येक छेद में एक-एक बीज बोना चाहिए (चित्र-2)। इसमें सिंचाई हजारे एवं फव्वारे से करना चाहिए तथा इसके उपरांत इसे सफेद प्लास्टिक फिल्म से ढक दें एवं अंकुरण के बाद प्लास्टिक चादर को हटा दें।

बुआई का समय

- ग्रीष्मकालीन - फरवरी-मार्च
- वर्षाकालीन - मई-जून
- पर्वतीय क्षेत्रों - मार्च से मई

बीज दर : 3-4 क्रि.ग्रा./हेक्टेयर

खाद एवं उर्वरक

बीज बोने के 3-4 सप्ताह पहले 20-25 टन कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी खाद को प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि तैयार करते समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अलावा 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 60 कि.ग्रा. पोटाश/हेक्टेयर की दर से आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और एक तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा आपस में मिलाकर बोने वाली नालियों के स्थान पर डालकर मिटटी में मिला दें और थाले बनायें। शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में बाँटकर बुआई के लगभग 25-30 दिन बाद नालियों में टॉपड्रेसिंग करें और गुड़ाई कर मिट्टी चढायें और दूसरी मात्रा पौधों की बढ़वार के समय (40-50 दिन बाद) लगभग फूल निकलने के पहले टापड्रेसिंग के रूप में दें। यूरिया का पर्णीय छिड़काव (5 ग्रा. यूरिया/लीटर पानी) करना लाभदायक है।

खरपतवार नियंत्रण एवं अंतःसस्य क्रियाएँ

आवश्यकतानुसार निकाई-गुड़ाई करते रहते हैं। पौधों का पूर्ण विकास होने पर खरपतवार का कुप्रभाव फसल के ऊपर नहीं होता है। व्यावसायिक स्तर पर खेती के लिए स्टाम्प 3.5 ली./हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर जमीन के ऊपर बुआई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करें। इसके बुआई के लगभग 30-40 दिन तक खरपतवार का नियंत्रण हो जाता है। बुआई के लगभग 30-35 दिन बाद नालियों या थाले की गुड़ाई कर मिट्टी चढ़ा देते हैं।

सिंचाई

वर्षाकालीन फसल के लिए पानी की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है। केवल आवश्यकता पड़ने पर ही सिंचाई की जाती है। औसतन गर्मी की फसल को 4-7 दिन तथा जाड़े की फसल को 10-15 दिन पर पानी देना चाहिए। यदि आवश्यकता से ज्यादा वर्षा हो तो खेत से पानी निकाल देते हैं।

पौधों को सहारा देना

ग्रीष्मकालीन सब्जियों में साधारणतया सहारा

देने की आवश्यकता होती है। लेकिन वर्षाकालीन फसल में पौधों को किसी मचान या अन्य से सहारा देने पर उनकी बढ़वार और उपज पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

फसल सुरक्षा

- **मदुरामिल आसिता (डाउनी मिल्डयू) :** यह एक कवक जनित रोग है। इससे पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले धब्बे दिखायी देते हैं और निचली सतह पर कवक की वृद्धि दिखायी पड़ती है तथा पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी रोकथाम हेतु 2 ग्राम मैकाजेब प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए एवं आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन बाद इसका छिड़काव पुनः करना चाहिए।
- **चूर्णिल आसिता (पाउड्री मिल्ड्रयू) :** रोग पौधे पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखायी पड़ते हैं। सफेद चूर्णिल पदार्थ अन्त में पूरे पौधें की सतह को ढ़क देता है। अधिक प्रकोप के कारण पत्तियाँ झड़ जाती है एवं फल छोटे आकार के हो जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु फफूँद नाशक दवा फेलिक्सीन 1 मि.ली. दवा एक लीटर पानी में मिलाकर सात दिनों के अन्तराल पर 1-2 बार छिड़काव करना चाहिए।
- **यामवर्ण :** इस रोग के प्रकोप से फलों एवं पत्तियों पर गहरे भूरे से काले रंग के धब्बे बन जाते हैं तथा रोग ग्रसित भाग मुरझाकर सूखने लगते हैं तथा फल सख्त हो जाते हैं। इस रोग की रोकथाम हेतु मैकोजेब 2 ग्रा./ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- **मोजैक :** यह रोग मोजैक वायरस के कारण होता है। यह एफिड से फैलता है। इससे प्रभावित पौधे की पत्तियों की लम्बाई एवं चौड़ाई कम हो जाती है। इसके फल अलग-अलग एवं बेडोल आकार के हो जाते हैं इसके नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखायी देते ही पौधे को उखाड़कर जला दे। एफिड की रोकथाम के लिए मेटास्टिाक्स या रोगार 1.5 मी.ली./ली. मिलाकर 10-15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें।

तुड़ाई, उपज एवं भण्डारण

जब फल विकसित पूर्ण आकार, कोमल एवं मुलायम हो तब इनको तोड़ लेना चाहिए। फलों की तुड़ाई 4-5 दिनों के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। खीरा की औसत उपज 150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

इसके फलों को 7.5-10 डिग्री सें.ग्रे. तापमान पर तथा 85 प्रतिशत सापेक्षित आर्द्रता पर लगभग दो सप्ताहों तक सुरक्षित भण्डारण कर सकते हैं। इससे कम तापमान पर भण्डारित करने पर फल पीले और गहरे रंग के हो जाते हैं।

मशरूम उत्पादनः एक लाभप्रद व्यवसाय

पी.के. शुक्ल[1]

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मशरूम का उत्पादन एवं उपभोग ईसा पूर्व लगभग 500-1000 वर्ष किये जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। किन्तु इसकी व्यापारिक खेती का शुरूआत सत्रहवीं शताब्दी में फ्राँस में हुई। भारतवर्ष में मशरूम की व्यापारिक खेती का प्रारंभ सन् 1960-1970 के बीच में पर्वतीय क्षेत्रों में किया गया। कालान्तर में इसकी खेती मैदानी एवं समुद्र तटीय क्षेत्रों में भी की जाने लगी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नयी दिल्ली के अनुसंधान प्रयासों से एक तरफ प्रचलित शीतकालीन बटन मशरूम (*एगोरिकस बाइस्पोरस*) की उत्पादकता में वृद्धि हुई और साथ-ही-साथ शीतकालीन ढ़िगरी (प्लूरोटस प्रजातियाँ) एवं ग्रीष्मकालीन दूधिया (*कैलोसाइब इंडिका*) एवं पुवाल मशरूम (*वोलवेरिल्ला वोलवेसिया*) का व्यापारिक खेती में भी समावेश हुआ। उत्पादकों एवं अनुसंधान तथा प्रसार संस्थानों के समेकित प्रयास के परिणामस्वरूप हमारा देश विगत तीन दशकों से लगभग 12 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर के साथ एक लाख टन से अधिक मशरूम उत्पादन कर रहा है।

यह सर्वविदित है कि मशरूम सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थों (कृषि अवशेष) पर उगता है और कार्बनिक पदार्थों की उपलब्धता में हमारा देश किसी से पीछे नहीं है। संसाधन संपन्न होते हुए भी मशरूम उत्पादन में अग्रणी स्थान अर्जित नहीं कर पाने के अनेक कारण हैं।

- उच्च गुणवत्ता वाले बीज की सरलता से अनुपलब्धता।
- स्थापित बाजार का अभाव।
- कृषकों में मशरूम उत्पादन संबंधी वैज्ञानिक सोच एवं शिक्षा की कमी।
- मशरूम उत्पादन को पूर्णकालिक व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाया जाना।

उपर्युक्त कारणों के संदर्भ में मशरूम उत्पादन संबंधी सफलता एवं असफलता की विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि बीज की उपलब्धता सुनिश्चित कर, बाजार की माँग को ध्यान में रखकर पूरे वर्ष मशरूम उत्पादन करने वाले कृषक सफल रहते हैं।

मशरूम उत्पादन का कार्य अधिक श्रमशील है। अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा भी किया जा सकता है। चूँकि यह एक वैज्ञानिक किस्म की खेती है अतः इसे प्रारम्भ करने से पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होता है। साथ-ही-साथ अच्छे उत्पादन हेतु अर्जित अनुभव भी महत्वपूर्ण है। अतः शुरूआत हमेशा ही छोटे स्तर से करनी चाहिये।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक

सारणी 1: मशरूम उत्पादन का वार्षिक कार्यक्रम

महीना		कार्य
जनवरी	:	• बटन एवं ढ़िंगरी मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• ढ़िंगरी मशरूम की बिजाई।
		• ढ़िंगरी मशरूम की पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों को खोलना।
फरवरी	:	• बटन एवं ढ़िंगरी मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• ढ़िंगरी मशरूम की बिजाई।
		• ढ़िंगरी मशरूम की पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों को खोलना।
मार्च	:	• बटन मशरूम का उत्पादन समाप्त होने पर उत्पादन कक्ष का विसंक्रमणीकरण।
		• ढ़िंगरी मशरूम की पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों को खोलना।
		• ढ़िंगरी मशरूम की बिजाई (माह के प्रथम सप्ताह में)।
		• दूधिया मशरूम की बिजाई (माह के अन्तिम सप्ताह में)।
अप्रैल	:	• ढ़िंगरी मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• दूधिया मशरूम की बिजाई।
		• दूधिया मशरूम हेतु उत्पादन कक्ष का विसंक्रमणीकरण।
		• दूधिया मशरूम की पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों पर आवरण मृदा बिछाना।
		• गेहूँ के भूसे की व्यवस्था एवं भंडारण।
मई	:	• दूधिया एवं ढ़िंगरी मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• दूधिया मशरूम की बिजाई।
		• दूधिया मशरूम की पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों पर आवरण मृदा बिछाना।
जून एवं	:	• दूधिया मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
जुलाई		• दूधिया मशरूम की बिजाई (10 जून, 10 एवं 30 जुलाई)।
		• पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों पर आवरण मृदा बिछाना।
अगस्त	:	• दूधिया मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• पूर्ण कवक जाल फैली थैलियों पर आवरण मृदा बिछाना।
		• बटन मशरूम उत्पादन हेतु कम्पोस्ट सामग्री की व्यवस्था।
सितम्बर	:	• दूधिया मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• बटन कम्पोस्ट बनाना प्रारम्भ (दिनांक 15-20 के मध्य)।
		• ढ़िंगरी मशरूम की बिजाई (माह के अन्त में)।

अक्टूबर	:	• दूधिया मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• बटन मशरूम उत्पादन कक्षों की सफाई एवं विसंक्रमणीकरण।
		• बटन मशरूम की बिजाई (दिनांक 17-21 के मध्य)।
		• दूसरे चक्र हेतु बटन कम्पोस्ट बनाना प्रारम्भ (यार्ड खाली होने के तुरन्त बाद)।
		• धान के पुवाल की व्यवस्था एवं भण्डारण।
		• ढ़िगरी मशरूम की बिजाई (दिनांक 15-30 के मध्य)।
नवम्बर	:	• बटन मशरूम ताखों पर आवरण मृदा बिछाना।
		• ढ़िगरी एवं बटन मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• बटन मशरूम की बिजाई।
दिसम्बर	:	• ढ़िगरी एवं बटन मशरूम की तुड़ाई, थैलीकरण एवं विक्रय।
		• बटन मशरूम ताखों पर आवरण मृदा बिछाना।
		• ढ़िगरी मशरूम की बिजाई।

इससे योजनाबद्ध कार्यक्रम के साथ व्यापारिक उन्नति होती है।

उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों के मौसम के अनुरूप पूरे वर्ष मशरूम उत्पादन की आवश्यकताओं एवं कार्यकलापों को सारणी 1 के माध्यम से माहवार रूप से सूचीबद्ध किया गया है।

वर्ष भर के सामान्य कार्य

उपर्युक्त तालिका में प्रस्तुत समयानुसार विशेष कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य निम्नानुसार हैं।

- बिजाई की योजना तिथि से कम-से-कम दो माह पूर्व स्पान प्रयोगशाला में अग्रिम आरक्षण कराना चाहिये।
- कमरों में सामान्य देखरेख करते हुए उत्पादन कक्ष में तापक्रम, आपेक्षित आर्द्रता एवं कार्बन डाईऑक्साइड पर नियंत्रण रखना चाहिये।
- कीट एवं रोगों के प्रकोप से बचाव एवं आवश्यकतानुसार नियंत्रण हेतु तैयारी रखनी चाहिये।
- आवरण मृदा बिछाने के बाद, थैलियाँ खोलने के बाद एवं उगती हुई कलिकाओं पर दिन में 3-4 बार जल छिड़काव करना चाहिये।
- कमरों की प्रतिदिन सफाई एवं सप्ताह में एक या दो बार फर्श का विसंक्रमणीकरण।

उपरोक्त कार्यक्रम के अनुसार वर्ष में किसी भी समय मशरूम उत्पादन कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है। प्रथम बार मशरूम उत्पादन प्रारम्भ करने वाले कृषकों के लिए शीतकाल से कार्य प्रारम्भ करना सर्वश्रेष्ठ रहता है।

ऊष्मीय प्रसंस्करण एवं उनका औद्यानिक पदार्थों की गुणवत्ता पर प्रभाव

डी.के. टंडन[1] एवं रेखा चौरसिया[2]
केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

प्राचीनकाल में खाद्य पदार्थों की आपूर्ति परिक्षरण विधियों की अनुउपलब्धता के कारण वातावरण पर निर्भर करती थी। अतः खाद्य पदार्थों की उपलब्धता अधिक समय तक सुनिश्चित करने के लिए उन्हें मुख्यतः धूप में सुखाकर संरक्षित किया जाता था। जैसे-जैसे नयी तकनीकियों का विकास होता गया, खाद्य पदार्थों को और अधिक रूचिकर बनाने की माँग भी बढ़ने लगी। साथ ही विभिन्न किस्म के नये उत्पाद भी बाजार में उतारे गये। आज उपभोक्ता पौष्टिक पदार्थ समुचित दाम में चाहता है। अतः खाद्य पदार्थों को प्रसंस्कृत करने के लिए विभिन्न तकनीकियों को प्रयोग में लाया जाता है। उनमें ऊष्मीय अभिक्रिया एक महत्वपूर्ण विधि है जिसमें ऊष्मा, भाप एवं उच्च ताप द्वारा खाद्य पदार्थ को उपचारित किया जाता है। इस विधि द्वारा परिरक्षित किया गया उत्पाद सील बन्द पात्रों में लम्बे समय तक भण्डारित किया जा सकता है।

खाद्य पदार्थों को ऊष्मीय विधि द्वारा संरक्षित करने की वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में निकोलस एपर्ट द्वारा किया गया। खाद्य पदार्थों की डिब्बा बन्दी फैक्ट्री की स्थापना सर्वप्रथम 1819 में अमेरिका में हुई। तदउपरान्त ऊष्मीय प्रसंस्करण विधि में काफी उन्नति हुई। आज ऊष्मीय प्रसंस्करण द्वारा परिरक्षित उत्पादों को 2-3 वर्षों तक आसानी से सुरक्षित रखा जा सकता है। यह प्रक्रिया एन्जाइम की क्रियाशीलता को रोकने एवं सूक्ष्म जीवों, कीट एवं परजीवी गतिविधियों को नष्ट करने के साथ-साथ खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक होती है। ऊष्मीय प्रसंस्करण से खाद्य पदार्थों के प्रतिरोधी पोषक तत्वों का नाश होता है एवं पोषक तत्वों की उपस्थिति बढ़ती है। प्रसंस्करण में खाद्य पदार्थों की किस्म (अधिक या कम अम्लीय), प्रकार (तरल, ठोस या अर्द्ध ठोस), समय तथा तापमान सूक्ष्म जीवों के निष्कासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज बाजार में ऐसे ही प्रसंस्करित उत्पादों की माँग है जो पौष्टिक होने के साथ उपभोग करने में भी आसान हों।

ऊष्मीय प्रसंस्करण विधियाँ

ऊष्मीय प्रसंस्करण की अनेक विधियाँ हैं जिनके द्वारा उत्पाद को संरक्षित किया जाता है। इनमें से कुछ विधियाँ निम्नलिखित हैं-

- **विवर्णीकरण (ब्लाचिंग) :** फल एवं सब्जियों को प्रसंस्करित करने से पहले उनकी एन्जाइम

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]तकनीकी अधिकारी

गतिविधियों को निष्क्रिय करने, सूक्ष्म जीवों को कम करने, ऊतकों को नरम करने तथा ऊतक गैसों को खत्म करने हेतु ब्लांच किया जाता है। फल एवं सब्जियों में ब्लाचिंग का समय उनके प्रकार, खाद्य पदार्थों के आकार, ब्लाचिंग तापमान, ऊष्मा का प्रकार आदि कारणों से प्रभावित होता है। ब्लाचिंग संबंधी अधिकांश क्रियाओं में ब्लाचिंग के लिए पानी को 100 डिग्री से.ग्रे. तक गरम कर उसमें फल एवं सब्जियों को 4-12 मिनट तक गरम करते हैं। उदाहरणार्थ आँवला से अचार या कैण्डी बनाने हेतु फांक निकालने के लिए आँवले को गरम पानी में 8-10 मिनट तक ब्लांच करते हैं। इसी प्रकार अमरूद की जैली बनाने हेतु अमरूद की फाँकों को गरम पानी में 10 मिनट तक ब्लांच किया जाता है। ब्लाचिंग हेतु गरम पानी के अलावा भाप, गर्म हवा या माइक्रोवेव को माध्यम के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

- **आंशिक निर्जीवीकरण (पास्तुरीकरण):** यह मुख्यतः मध्यम ऊष्मा उपचार से संबंधित है जो सामान्यता 100 डिग्री से.ग्रे. से कम तापमान पर किया जाता है। यह खाद्य पदार्थों में उपस्थित एन्जाइम गतिविधियों को रोकता है एवं उसमें उपस्थित रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवों जैसे यीस्ट (खमीर), फफूँद एवं जीवाणु को निष्क्रिय कर देता है। कम अम्लता वाले खाद्य पदार्थों में यह रोगकारक जीवाणु को खत्म करने का काम करता है। लेकिन अधिक अम्लता वाले खाद्य पदार्थों में सूक्ष्म जीवों को नष्ट करना एवं एन्जाइम गतिविधियों को रोकने का कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि आंशिंक निर्जीवीकरण 100 डिग्री सें.ग्रे. से कम तापमान पर किया जाता है अतः आंशिक निर्जीवीकृत उत्पादों को कुछ दिनों या सप्ताह तक ही भण्डारित किया जा सकता है। आंशिक निर्जीवीकरण मुख्यतः तरल खाद्य पदार्थों में ऊष्मा द्वारा किया जाता है।

- **निर्जर्मीकरण/जीवाणुनाशन (स्टेरिलाइजेशन):** इसके अन्तर्गत खाद्य पदार्थों को पर्याप्त लम्बे समय तक उच्च तापमान पर रखते हैं जिससे उसमें उपस्थित सभी सूक्ष्म जीव नष्ट हो जायें। व्यावसायिक स्तर पर यह विधि काफी उपयोगी है। व्यावसायिक निर्जर्मीकरण का उद्देश्य सूक्ष्म जैविक तथा एन्जाइम क्रियाओं को नष्ट कर खाद्य पदार्थों को लम्बी अवधि तक टिकाऊ बनाये रखना है जो कि फल एवं सब्जियों की प्रकृति एवं भण्डारण पर निर्भर करता है। जिन उत्पादों को निर्जर्मीकृत करना कठिन होता है वे कम अम्लता वाले एवं बहुधा उच्च प्रोटीन युक्त होते हैं जिनमें जीवाणु आसानी से पनपते हैं। निर्जर्मीकरण के दौरान अनेक बार अधिक गर्म करने के कारण खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता एवं पोषकता प्रभावित होती है। अतः उत्पाद की गुणवत्ता एवं पोषकता बनाये रखने हेतु यह मुख्यतः कई विधियों द्वारा क्रियान्वित होती है।

- **कम तापमान पर निर्जर्मीकरण :** इस विधि में तापमान को 100 डिग्री सें.ग्रे. से कम रखा जाता है। इसमें खाद्य पदार्थ को किसी पात्र में

रखने के बाद 65-85 डिग्री सें.ग्रे. तापमान पर गर्म कर बोतलों में भर दिया जाता है। फिर इन बोतलों को खौलते हुए पानी में 15-20 मिनट तक गर्म करते हैं ताकि उत्पाद सुरक्षित रहे। लघु उद्योगों में फलों के जूस को इस विधि द्वारा निर्जर्मीकृत करते हैं।

- **उच्च तापमान पर निर्जर्मीकरण :** इसके अंतर्गत फल एवं सब्जियों को 100 डिग्री सें. ग्रे. से अधिक तापमान पर गर्म करते हैं। जिन फलों एवं सब्जियों की अम्लता कम होती है उन्हें 100 डिग्री सें.ग्रे. से अधिक तापमान पर कई घंटे गर्म करने पर सारे बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। साधारण नियमानुसार सब्जियों को 100 डिग्री सें.ग्रे. पर एक बार गर्म करने से वह सुरक्षित नहीं रहती है क्योंकि उसमें *क्लोस्ट्रीडियम बोटुलिनस* के बहुत से हानिकारक बीजाणु पाये जाते हैं।
- **अति उच्च तापमान पर निर्जर्मीकरण :** तरल खाद्य पदार्थों के प्रसंस्करण में यह विधि प्रयोग में लायी जाती है। इसमें खाद्य पदार्थों को अतिउच्च तापमान (137.8 से 148.9 डिग्री सें.ग्रे.) पर 15-45 सेकेण्ड तक गरम कर तुरंत ही ठंडा करते हैं और जीवाणुहीन वातावरण में वायुरोधी डिब्बों में पैक करते हैं। यह विधि ऐसेप्टिक पैकेजिंग भी कहलाती है।
- **निर्जलीकरण :** साधारणतया निर्जलीकरण की प्रक्रिया धूप में सुखा कर की जाती है। यह एक सस्ती एवं सरल विधि है। परन्तु इस विधि से उत्पाद को सुखाने में अधिक समय लगता है तथा पदार्थ एक समान सूख नहीं पाता है। इसके अलावा वातावरण में विद्यमान मिट्‌टी के कण एवं छोटे-छोटे कीटाणुओं के कारण उत्पाद की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। अतः उत्पाद की गुणवत्ता एवं पोषक तत्वों को बनाये रखने हेतु उत्पाद को ओवन या इलेक्ट्रिक डीहाइड्रेटर में सुखाते हैं। व्यावसायिक स्तर पर फलों एवं सब्जियों को सुखाने के लिए बाजार में विभिन्न यंत्र उपलब्ध हैं। इस विधि द्वारा उत्पाद को सुखाने में समय कम लगता है एवं गुणवत्ता भी बनी रहती है। विभिन्न प्रकार के उत्पादों को अलग-अलग तापमान पर सुखाया जाता है।
- **माइक्रोवेव ऊष्मन :** माइक्रोवेव ऊष्मन द्वारा उत्पाद तैयार करने में बहुत कम समय लगता है और वातावरण में भी किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलता है। सूक्ष्म तरंगे या माइक्रोवेव विकरण ऊर्जा की वे विद्युत तंरगें हैं जो अन्य विद्युत चुम्बकीय विकरणों जैसे प्रकाश तंरगों और रेडियोधर्मी तरंगों से मूलतः भिन्न होती हैं। माइक्रोवेव में सूक्ष्म तरंग आवर्तता 300 मेगाहर्टज से 300 गीगा हर्टज के बीच होती है। जब सूक्ष्म तरंगे खाद्य पदार्थों से होकर गुजरती हैं तो खाद्य पदार्थों में उपस्थित पानी तथा अन्य ध्रुवीय अणु विद्युत क्षेत्र की सीध में आ जाते हैं। विद्युत क्षेत्र प्रति 2450 (मेगा हर्टज) मिलियन टाइमान विपरीत दिशा में हो जाता है। इसमें घूमने वाले अणु अन्तर आण्विक घर्षण उत्पन्न करते हैं जिसके फलस्वरूप ऊष्मा उत्पन्न होती है और खाद्य पदार्थ अत्यन्त शीघ्रता से गर्म हो जाता है। माइक्रोवेव ऊर्जा

कई प्रकार से प्रयोग में लायी जा सकती है जैसे गर्म करना, सिकाई एवं प्राथमिक पकाई, गाढ़ा करना, ब्लाचिंग, पास्तुरीकरण, निर्जर्मीकरण एवं शुष्कन।

- **वाष्पीकरण :** इस विधि द्वारा तरल खाद्य पदार्थों को गर्म कर उनका पानी हटाया जाता है। वाष्पीकरण की प्रक्रिया मुख्यतः दो विधियों द्वारा की जाती है।
- **उच्च ताप लघु वाष्पीकरण :** इस विधि से तरल खाद्य पदार्थों को उच्च ताप द्वारा सान्द्र किया जाता है। इसमें वाष्पीकरण की प्रक्रिया कई चरणों में पूर्ण होती है जिसका तापमान 39.5 से 96 डिग्री सें.ग्रे. के बीच होता है।
- **निम्न ताप और निर्वात वाष्पीकरण :** निम्न ताप वाष्पीकरण से सर्वोत्तम गुण वाला उत्पाद प्राप्त होता है। इस विधि में जल का निष्कासन तेजी से किया जाता है। जिससे अतितापन का खतरा कम हो जाता है क्योंकि वाष्पीकरण का तापमान 18 से 30 डिग्री सें.ग्रे. के बीच रखा जाता है।
- **गुणवत्ता पर प्रभाव :** ऊष्मीय प्रसंस्करण का उद्देश्य कम समय में उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पाद बनाना है जिन्हें अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सके। साधारणतया ऐसी धारणा है कि प्रसंस्कृत उत्पाद की गुणवत्ता ताजे फल एवं सब्जियों की अपेक्षा काफी कम होती है। लेकिन टमाटर सॉस जैसे उत्पाद आदि में पौष्टिक पदार्थ सांद्र हो जाते हैं और गुणवत्ता विद्यमान रहती है। ऊष्मीय प्रसंस्करण के दौरान अनेक प्रकार की भौतिक एवं रासायनिक क्रियाएँ होती हैं जो उत्पाद की गुणवत्ता को निम्न प्रकार से प्रभावित करती हैं :
- **रंग :** ऊष्मीय प्रसंस्करण के दौरान कई वर्ण यौगिक जैसे-क्लोरोफिल, एंथोसायनिन आदि के विघटन के कारण खाद्य पदार्थों के रंग में परिवर्तन आ जाता है। उत्पाद के सुखाने पर उसमें से पानी निकल जाने के कारण ठोस पदार्थ की सान्द्रता बढ़ जाती है जिससे उत्पाद का रंग गहरा हो जाता है। फल एवं सब्जियों के रंग को सुरक्षित रखने के लिए सोडियम कार्बोनेट या कैल्सियम ऑक्साइड की थोड़ी सी मात्रा पानी (जिसमें उत्पाद को गर्म करते हैं) में मिलाने पर हरी सब्जियों का रंग बना रहता है। इसी प्रकार सेब या आलू को काट कर उसे हल्के नमक के घोल में रखने पर उसका रंगा काला नहीं पड़ता है।
- **संरचना :** ऊष्मीय प्रसंस्करण से उत्पादों के ऊतक नर्म पड़ जाते हैं एवं गैसों के निकल जाने के कारण उत्पाद की संरचना पर प्रभाव पड़ता है जिससे वह नर्म पड़ जाते हैं। फल एवं सब्जियों के नर्म पड़ने में मुख्यतः उनमें उपस्थित पेक्टिन के विघटन, स्टार्च के श्लेषीकरण और कुछ मात्रा में हेमीसेल्यूलोज के घुल जाने के कारण होती है। इसे रोकने के लिए कैल्सियम साल्ट की थोड़ी मात्रा जिस पानी में फल या सब्जी ब्लांच कर रहे हैं उसमें मिलाने से उत्पाद की संरचना में ज्यादा ह्रास नहीं होता है। अलग-अलग फलों के लिए अलग-अलग

साल्ट प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे चेरी के लिए कैल्सियम हाईड्राक्साइड, टमाटर के लिए कैल्सियम क्लोराइड एवं सेब के लिए कैल्सियम लैक्टेट का प्रयोग किया जाता है।

- **सुगन्ध एवं सुवास :** ऊष्मीय प्रसंस्करण के दौरान अधिक ऊष्मन के कारण वाष्पशील सुवास यौगिकों का कुछ ह्रास हो जाता है। यह ह्रास फल एवं सब्जियों में एल्डीहाइड, कीटोन, अमीनो एसिड, आर्गेनिक एसिड, शर्करा आदि के विघटन एवं संगठन के कारण होते हैं। उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों में सड़न रोकने के लिए सड़न रोकने वाली पैकेजिंग (ऐसेप्टिक पैकेजिंग) का प्रयोग करते हैं। इसमें खाद्य पदार्थ को बहुत कम समय के लिए अतिउच्च तापमान पर प्रसंस्कृत करते हैं और जीवाणुहीन वातावरण में ही पैकिंग कर सील कर देते हैं। इस तरह की पैकेजिंग में उत्पाद की सुगन्ध एवं सुवास ताजे फल एवं सब्जियों के समान होती है।
- **पोषक तत्व :** ऊष्मीय प्रसंस्करण में मुख्यतः विविर्णीकरण के दौरान खनिज, पानी में घुलनशील विटामिन और दूसरे यौगिकों का ह्रास हो जाता है जो फल एवं सब्जियों की किस्म, परिपक्वता, ब्लांच करने का तरीका, समय, तापमान एवं ठंडा करने की विधि पर निर्भर करता है। कैनिंग द्वारा प्रसंस्कृत पदार्थों में शर्करा एवं वसा की हाइड्रोलिसिस हो जाती है। लेकिन यह तत्व उत्पाद में बने रहते हैं और पौष्टिकता का ज्यादा ह्रास नहीं होता है। प्रोटीन का भी जमाव हो जाता है और उनकी जैविक क्षमता में अमीनो ऐसिड ट्रिपटोफेन एवं मिथियोनीन में कमी आने से क्षति होती है।

वर्तमान समय में ऊष्मीय प्रसंस्करण की उपयोगिता एवं इसके लाभ इतने अधिक हैं कि अन्य अलाभकारी कारक इसके आगे गौण हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप ऊष्मीय प्रसंस्करण के दौरान कुछ उत्पादों की सतह में चमक आ जाती है जिससे उनका रंग पहले की अपेक्षा ज्यादा आकर्षक नजर आने लगता है। कुछ कसैले फल जैसे आँवला जिनको ताजे फल के रूप में प्रयोग में नहीं ला पाते हैं उन्हें उत्पाद बनाने के पश्चात आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है।

फल एवं सब्जी अपशिष्टों के मूल्यवर्धन का महत्व

नीलिमा गर्ग[1], प्रीति यादव[2], देवेन्द्र कुमार[3], कौशलेश यादव[4] एवं संजय कुमार[5]
केन्द्रीय उपोषण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फल और सब्जी उत्पादन में भारत विश्व का एक अग्रणी देश है। यहाँ लगभग 71.52 मिलियन टन फल और 60 मिलियन टन सब्जी का उत्पादन होता है। फलों की रासायनिक संरचना तथा शीघ्र खराब होने की प्रकृति एवं हमारे देश की उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु परिस्थितियों के कारण तुड़ाई से लेकर भण्डारण एवं विपणन तक फल के कुल उत्पादन का 25 से 30 प्रतिशत खराब हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से यह घाटा 5000 करोड़ से अधिक का आँका गया है। वर्तमान परिदृश्य में प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों विशेषकर फल एवं सब्जी का उपयोग काफी बढ़ा है। फल एवं सब्जी के नये-नये प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना की गयी है। किन्तु प्रसंस्करण संबंधी कुछ समस्याएँ भी निकलकर सामने आयी हैं जिनमें ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की समस्या प्रमुख है। फल प्रसंस्करण के दौरान ठोस तथा द्रव दोनों प्रकार के अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। ठोस अपशिष्ट फल भार के 20-50 प्रतिशत होते हैं। ये अपशिष्ट कार्बनिक पदार्थ जैसे सेल्यूलोज, स्टॉर्च, पेक्टिन, विटामिन एवं खनिज युक्त होते हैं। ये जीवाणुओं की वृद्धि के लिए आदर्श माध्यम होते हैं तथा वातावरण में प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त भारी मात्रा में उत्पन्न होने के कारण इन अपशिष्टों के निस्तारण के लिए खुली भूमि का प्रयोग किया जाता है जो खेती योग्य भूमि का दुरूपयोग है।

इस समस्या के दो समाधान हो सकते हैं। पहला यह कि अपशिष्ट की मात्रा कम-से-कम हो जिससे नुकसान भी कम होगा तथा दूसरा यह कि इसको मूल्यवर्धित उत्पाद में परिवर्तित किया जाये जिसका बाजार मूल्य, फल उत्पाद के मूल्य के समकक्ष या उससे अधिक हो। इस प्रकार से अपशिष्ट का उपयोग न केवल फल प्रसंस्करण के लागत मूल्य को कम करेगा अपितु प्रदूषण भी घटायेगा। साथ-ही-साथ हम प्रकृति प्रदत्त उपहार फल तथा सब्जियों के प्रत्येक भाग का भरपूर उपयोग कर पायेंगे। अपशिष्ट के मूल्यवर्धन के लिए रासायनिक निष्कर्षण एवं किण्वन विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं।

किण्वन

सेब की खली (पोमेस) से उच्च गुणवत्ता का साइडर बनाया सकता है। इसी प्रकार अंगूर की खली से कम अल्कोहल युक्त वाइन का उत्पादन भी संभव है। सूखे, कटे-फटे सेब, अंगूर, संतरे इत्यादि से ब्रॉन्डी भी बनायी जा सकती है। अनन्नास तथा आम के छिलके से भी फल की प्राकृतिक सुगन्ध युक्त सिरका बनाया जाता है।

आम के छिलके से प्राप्त सिरका

[1]प्रभागाध्यक्ष, [2]महिला वैज्ञानिक (डी.एस.टी.), [3,4]शोध सहायक एवं [5]तकनीकी अधिकारी

एक कोशिकीय प्रोटीन : सूखे और पेक्टिन निकाले सेब की खली का उपयोग कर ट्राइकोडर्मा और एस्परजिलस नाइजर का उत्पादन किया जाता है। ठीक वैसे ही जैसे एक कोशिकीय प्रोटीन का उत्पादन किया जा सकता है। रस निकालने के पश्चात बचे हुऐ अमरूद तथा सेब के गूदों का भी एक कोशिकीय प्रोटीन उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अनन्नास के अपशिष्ट तथा नींबू वर्गीय फलों के अपशिष्ट से भी एक कोशिकीय प्रोटीन का उत्पादन किया जा सकता है। शराब की भट्टी तथा आसवन संयंत्रों से प्राप्त अपशिष्ट से भी एकल कोशिकीय प्रोटीन को प्राप्त किया जा सकता है। आलू तथा आम के छिलकों का प्रयोग मशरूम उत्पादन में सफलता पूर्वक किया गया है।

एक कोशिकीय प्रोटीन

आम के छिलके के प्रयोग से मशरूम उत्पादन

पशु चारा : फलों तथा सब्जियों से प्राप्त अपशिष्ट रेशे से समृद्ध होते हैं। इनमें सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज, लिग्निन तथा सिलिका अधिक मात्रा में होती है तथा प्रोटीन की मात्रा कम होती है। सूक्ष्मजीवों के द्वारा की गयी किण्वन प्रक्रिया से प्रोटीन की मात्रा को समृद्ध किया जा सकता है। फल तथा सब्जी से प्राप्त खली विभिन्न यीस्ट की प्रजातियों द्वारा किण्वन के उपरान्त प्रोटीन, खनिज, विटामिन तथा फैट से समृद्ध हो जाते हैं। शराब, बीयर एवं आसवन संयत्रों द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों को पशुचारों में उपयोग किया जा सकता है।

पशु चारा

अल्कोहल : फल और सब्जी उद्योगों से प्राप्त अपशिष्ट कार्बोहाइड्रेट से युक्त होते हैं। इन्हें ठोस अवस्था किण्वन के द्वारा ईथेनॉल उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। बायो ईथेनॉल के अनेक उपयोग होते हैं। इसे तरल ईंधन के पूरक के रूप में और अनेक उद्योगों में एक विलायक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। सेब से ईथेनॉल के उत्पादन की प्रक्रिया को विकसित किया गया है। नाशपाती और चेरी के अपशिष्ट को ईथेनॉल के उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार संतरे के छिलकों को एंजाइमिक हाइड्रोलिसिस के बाद *सेकेरोमाइसिस सेरेविसी* द्वारा ईथेनॉल उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है।

बायोगैस उत्पादन : कृषि, वन, फसल के अवशेष तथा फल एवं सब्जी प्रसंस्करण से प्राप्त ठोस एवं तरल कचरे का बायोमास, मल और कीचड़ का सूक्ष्मजैविक प्रौद्योगिकी के माध्यम से बायोगैस के उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के द्वारा जटिल पॉलीमर का जैविक क्षरण होता है तथा बायोगैस का उत्पादन होता है।

कार्बनिक अम्ल : शर्करा के वायुवीय किण्वन के फलस्वरुप कार्बनिक अम्लों का उत्पादन होता है। अंगूर तथा सेब के रस निष्कर्षण उपरान्त

कार्बनिक अम्ल

प्राप्त खली से साइट्रिक एवं लैक्टिक अम्लों का निष्कर्षण किया जाता है जिनका विभिन्न उद्योगों जैसे मिष्ठान, कृत्रिम पेय आदि में काफी उपयोग होता है।

एंजाइम (विकर) : ये बायो उत्प्रेरक का कार्य करते हैं तथा विभिन्न उद्योगों विशेषकर खाद्य, फलरस पेय, चमड़ा, कपड़ा और साबुन में इनका उपयोग होता है। पेपेन के अतिरिक्त अधिकतर विकर बाहर से आयात किये जाते हैं जिससे उत्पाद का लागत मूल्य काफी बढ़ जाता है। पशु स्रोत से प्राप्त विकर की अपेक्षा सूक्ष्मजैविक स्रोत से प्राप्त विकर का उत्पादन काफी सस्ता एवं सुगम होता है। कृत्रिम कार्बनिक स्रोत के स्थान पर फल अपशिष्ट का प्रयोग विकर उत्पादन की लागत को अधिक कम कर सकता है। आम का छिलका तथा गुठली, अंगूर खली, नीबू खली इत्यादि का प्रयोग कर पेक्टिनेज, सेल्यूलेज तथा एमाइलेज जैसे एंजाइम (किण्वक) का उत्पादन किया जा सकता है।

एंजाइम (विकर)

एन्सीलेज : प्रसंस्करण अपशिष्ट अत्यधिक मौसमी होते हैं। उन्हें सुखाना संरक्षण का एक आसान तरीका है। हरे चारे की तरह इन अपशिष्टों से एन्सीलेज तैयार किया जा सकता है। जिसका उपयोग पशु के चारे के रूप में किया जा सकता है। आम, नारंगी और मटर के छिलके से एन्सीलेज सफलतापूर्वक तैयार किया गया है। एन्सीलेज सामग्री को बायोगैस उत्पादन के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

एन्सीलेज

खाद : यह जटिल कार्बनिक संरचना वाले अपशिष्ट से निपटने की एक पारम्परिक जैविक विधि है तथा आज के परिवेश मे यह एक बेहतर विकल्प है। ठोस अपशिष्ट से निपटने की एक प्रमुख जैवप्रौद्योगिकी विधि के रूप में इसकी गणना होती है। अनेक देशों में खाद बनाने को, डंपिंग अथवा जलाये जाने से बेहतर पर्यावरणीय संबंधी हल माना जाता है। खाद बनाना मूल रूप से एक जैविक विघटन प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों की चयापचय गतिविधियों के कारण स्थिर लघु संगठन युक्त कार्बनिक पदार्थ बनते हैं। फल अपशिष्ट की खाद कृषि खाद की तुलना में बेहतर खाद मूल्य रखती है।

खाद

रासायनिक निष्कर्षण

खाद्य रेशे : छिलके अथवा खली जैसे फल अपशिष्टों में रेशे की मात्रा लगभग 30 प्रतिशत तक होती है। इन अपशिष्ट पदार्थो को क्षारीय विलयन के पश्चात अल्कोहल में उबालकर रेशे प्राप्त किए जाते है जिनका उपयोग मिष्ठानयुक्त पदार्थों का पोषक मूल्य बढ़ाने के लिए किया जाता है।

आम के रेशे युक्त बिस्कुट

स्टार्च : स्टार्च युक्त फल अपशिष्ट जैसे आम की गुठली में 58 प्रतिशत तक स्टार्च पाया जाता है।

आलू के तरल प्रसंस्करण अपशिष्ट में भी स्टार्च काफी अधिक मात्रा में होता है। यह आटा तथा दवा उद्योग द्वारा प्रयुक्त होने वाले अनेक पदार्थों को बनाने में काम आता है।

स्टार्च

पेक्टिन : यह जैम, जैली इत्यादि को जमाने वाला एक पदार्थ है। वाणिज्यिक स्तर पर पेक्टिन नीबू के छिलके और सेब की खली से निकाला जाता है। पैशन फल, शहतूत, आम एवं अमरुद में भी पेक्टिन काफी मात्रा में होता है। गूदा हटाने के बाद प्राप्त कठोर कवच में पेक्टिन होने की काफी संभावनाएँ होती हैं।

पेक्टिन

तेल : कुछ फलों की गिरी जैसे आम, खुबानी, आड़ू आदि में तेल काफी मात्रा में होता है। जिसमें से कुछ का प्रयोग प्रसाधन तेलों, क्रीम इत्यादि में किया जा सकता है। पामगिरी का तेल खाना पकाने के लिए सर्वविदित है। अन्य फलों के बीजों जैसे अंगूर, बेल, पपीता आदि से भी तेल निकाला जा सकता है। इनके उपयोग की अच्छी संभावनाएँ है।

आम की गिरी का तेल

फल एवं सब्जी अपशिष्ट, ऐन्टीऑक्सीडेंट गुणों के साथ-साथ जैविक रंग तथा फिनोलिक यौगिकों के भी अच्छे स्रोत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि फल और सब्जी अपशिष्ट के मूल्यवर्धित उत्पादों में उपयोग की काफी संभावनाएँ है। इससे वातावरण में प्रदूषण की समस्या हल होगी तथा प्रसंस्करण उद्योगों को भारी लाभ होगा।

डॉ. एच. रविशंकर, निदेशक हिन्दी कार्यशाला के अवसर पर सम्बोधित करते हुए

यूनिकोड विषय पर आयोजित कम्प्यूटर हिन्दी कार्यशाला के अवसर पर अधिकारी एवं कर्मचारीगण

लखनऊ की नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की छमाही बैठक के दौरान
राजभाषा पत्रिका प्रकाशन के लिये प्रदत्त द्वितीय पुरस्कार के साथ
संस्थान के निदेशक, डॉ. एच. रविशंकर (बीच में) एवं अन्य

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 2481164